(149)

अल्लाह मेघ दे

अल्लाह मेघ दे

रजिया सज्जाद जहीर

राधाकृष्ण प्रकाशन

मूल्य : ५ रु० ५० पैसे

प्रकाशक
अरविन्दकुमार
राधाकृष्ण प्रकाशन
२, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-११०००६

मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस,
दिल्ली-११०००९

क्रम

अल्लाह मेघ दे

अल्लाह मेघ दे

लखनऊ आर्ट कालेज के एक कमरे में।

एक दुबली-सी, छोटे क़द की लड़की, हरे रंग की सूती साड़ी और सफ़ेद सूती ब्लाउज़ पहने, रेती चला रही थी। बार-बार वह इस तरह झुकती और खड़ी होती थी, जैसे गेहूँ की बाली हवा के झोंके से दोहरी हो, और फिर सीधी हो जाये। हर बार झुक कर, वह चन्द मिनटों तक रेती चलाती, फिर सीधी हो जाती कमर को खींच कर, गर्दन को घुमा के सिर इधर-उधर करके, अपने काम को जाँचती, फिर झुकती, बार-बार हाथ पीछे करके कमर पर आड़ा रखती, और दाहिना हाथ फिर चलने लगता, जिसमें पड़ी हुई काँच की सादी सुर्ख चूड़ियाँ पतली कलाई के हर घुमाव पर खनखना उठतीं। कभी-कभी गर्दन सीधी करके, वह बाँयें हाथ की उंगलियाँ अपने गेहुएँ रंग के दमकते हुए गालों पर फेरती, कभी घने स्याह बालों में फँसाती। उँगलियों के पोरों पर पसीना चमकने लगता, बड़ी-बड़ी स्याह आँखों में थकन की झलक नज़र आती। फिर कमर झुक जाती, फिर रेती चलने लगती, और फिर चूड़ियाँ खनखनाने लगतीं।

इन्सान की कल्पना पथरीले रास्तों से फिर टकराती अपने लिये एक मंजिल ढूंढ़ रही थी। आहिस्ता-आहिस्ता सामने रखे हुए ऊबड़-खाबड़ पत्थर के टुकड़े में से एक नन्हें-से बच्चे का सुडौल गुलगुला जिस्म उभर रहा था।

लड़की ने एक बार नज़रें उठायीं, और झाँक कर सामने खुली हुई खिड़की से आसमान की तरफ़ देखा। एक किनारे से कुछ बादल उठ रहे थे—ऊदे-भूरे, सुरमई बादल, जो आसमान पर आगे को फैलते ही जा रहे थे। दरख्तों की चोटियाँ झूम रही थीं, और उन पर चीलों के उड़ते हुए झुंड चक्कर काट रहे थे। यह तो कुछ बारिश के आसार थे।

उसने एक ठण्डी साँस ली, और दरवाज़े की तरफ़ देखा, फिर कलाई पर लगी हुई घड़ी की तरफ़! छः बजने को आ गये! अभी तक नरेन्द्र नहीं आया। कैसी गर्मी है। कितनी घुटन है। अब के साल यह क्या है, कि अक्तूबर शुरू होने वाला है, अभी तक इतनी गर्मी है। पानी जो नहीं बरसा। सारा अगस्त सूखा गुज़रा। जन्माष्टमी पर बस एक रात जरा-सा पानी बरसा, और फिर सन्नाटा हो गया। कुछ बूंद पड़ जातीं, तो कितना अच्छा होता!

उसने फिर खिड़की से झाँका। हवा अब भी वैसी ही चल रही थी, और उसमें कुछ ऐसा सोंधापन था, जैसे दूर कहीं पानी बरसा हो।

और ये सब लोग क्या चले गये? इतनी देर से उसने यह ग़ौर ही नहीं किया था, कि कमरा लगभग खाली हो चुका था। दूर एक सिरे वाली मेज़ पर अहमद कुछ काम कर रहा था। बाहर दरवाज़े वाली मेज़ पर चपरासी बैठा ऊँघ रहा था। और बगल वाले कमरे से अलबत्ता छत का पंखा चलने की रुँ-रुँ आहिस्ता-आहिस्ता आ रही थी, जिसके मानी यह थे कि बनर्जी साहब अभी तक आफिस में काम कर रहे थे। शायद कोई और भी उस्ताद वहाँ हों! बनर्जी साहब का तो उसूल था, कि जब तक एक-एक लड़की नहीं चली जाती थी, वह अपने आफिस में डटे रहते थे। लड़के कभी-कभी लड़कियों को ताना भी देते

थे, कि बनर्जी साहब तो बस अपनी बेटियों को ही चाहते हैं, मगर बेटियाँ ऐसी ढीठ हैं कि हर शाम बेचारे खुद खड़े होकर एक-एक को रुख़सत करते हैं, और सुबह हुई कि फिर सब मैके आ पहुँचती हैं।

उसने फिर एक ठंडी साँस ली। यह कहाँ रह गया नरेन्द्र ? फिर सिर को झटका देकर, उसने जल्दी-जल्दी रेती चलानी शुरू कर दी। बनर्जी साहब को यह पसन्द नहीं था, कि लड़कियाँ देर तक कॉलेज में ठहरें। नुमाइश की तारीख आजकल ही में मुक़र्रर होने वाली थी, और उसे अभी बहुत-सा काम निबटाना था।

उसने कई मिनट रेती चलाने के बाद कमर सीधी करके, बुरादे को फूँका ही था, कि दाहिनी तरफ़ का दरवाज़ा आहिस्ता से खुला, और एक लड़का अन्दर आया। सफ़ेद सूती कमीज़, सफ़ेद पतलून, खुलता रंग, रूखे घने बाल, खड़ा-खड़ा नक्शा, तेज़ ज़हीन आँखें, लम्बा क़द। उसने भी आहिस्ता से अपने पीछे दरवाज़ा बन्द किया। पहले अहमद ने उसे देखा और हाथ हिलाया। फिर वह सीधा उस लड़की की तरफ़ बढ़ा। लड़की उसे देख कर चुपके से मुस्कराई, मगर सिर उठा कर नहीं देखा। न हाथ रोका। रेती उसी तरह चलती रही। भुरभुरा पत्थर बराबर उसके पाँव पर गिरता रहा। लड़का और क़रीब आया, और आहिस्ता से बोला—"हेलो, नीता !"

"हेलो।"—लड़की ने ऐसे बन कर जवाब दिया, जैसे उसे कोई परवाह नहीं कि कौन आया, और क्यों आया है, आया है तो आया करे!

लड़का एक मिनट चुप रहा, फिर बोला—"बहुत व्यस्त हो ?"

अब नीता से हँसी ज़ब्त न हो सकी। खिलखिला कर बोली—"हाँ, हूँ तो। मगर तुम्हें इतनी जल्दी फ़ुरसत कैसे मिल गई ?"

लड़के ने नीता की बात में छुपे हुए व्यंग्य को या तो समझा नहीं, या वह ज़ाहिर ही नहीं करना चाहता था, कि समझ गया। "भई, वह प्रोफेसर आज एक मीटिंग में चले गये। उन्हीं को एक्सपेरिमेन्ट लेना था। सो हम छूट गये।....कहो, तुम्हारे यह साहबजादे अब और

कितने दिन में खत्म होंगे, भई ? कब से बना रही हो, और अभी तक इनका नाक-मुँह भी समझ में नहीं आता।"

नीता हँसी, फिर गम्भीर हो कर बोली "कुछ खबर है आपको, कि इन्सान को निखरने में कितना वक़्त लगा ? ....लाखों बरस !"

नरेन्द्र ने कानों पर हाथ रखे। "अरे भई, यह सब तो तुम्हारे चचा ज़ानें। वह इतिहास के विद्वान ठहरे।"

नीता हँसी। उसके छोटे-छोटे, बराबर-बराबर जमे हुए दाँत चमकने लगे। "और वैसे भी यह एक आर्ट है। इसको समझने के लिये खोपड़ी में गूदा चाहिये। यह कोई चूहे मारना नहीं है।" और उसने अपनी बनाई हुई मूर्ति पर बड़े प्यार से हाथ फेरा।

नरेन्द्र ने ज़रा आगे बढ़ कर, मेज़ पर अपनी दोनों कुहनियाँ टिका दीं, कमर झुकाकर, टेढ़ा होकर, लड़की को व्यंग्यपूर्ण नज़रों से बड़े प्यार से देखा, और कहा—"जी हाँ, अगर हम लोग चूहे न मारते होते तो आप पिछले महीने निमोनिया से मर जातीं। जब अस्पताल जाना पड़ा था, तो सब आर्ट-वार्ट धरा रह गया था। उस वक़्त तो सिर्फ बस एक ही चीज़ सच्ची-सच्ची दिखाई देती थी, और सब से ऊँची — ड्रग !"

लड़की ज़रा-सा झेंप कर बोली—"चलो, मान लिया कि जो काम होता है, वह ड्रग रिसर्च में होता है, और दुनिया में सबसे बड़े होते हैं साइन्टिस्ट। ....चलो, देखो।" और उसने फिर अपनी रेती उठाई।

नरेन्द्र ने उसकी बाँह पर अपना हाथ रख दिया। "अच्छा बस अब रहने दो। चलो, मेरे साथ।" दूसरा हाथ पतलून की जेब में डाल कर, उसने दो टिकट निकाले। "चैकोस्लोवाकिया से कठपुतली पार्टी आई है। कहा नहीं था मैंने उस दिन ?....बड़ी भीड़ है वहाँ। न जाने कितनी मुश्किल से ये दो टिकट मिले हैं। जल्दी करो। साढ़े-सात बजे से शो है।"

"उफ्फोह, तो मैं भी क्या कोई कठपुतली हूँ, कि जहाँ तुम कहोगे

फौरन चल दूँगी? ....सामान तो बन्द कर दूँ। और चाची से भी पूछना होगा, वरना वह यहाँ फोन पर फोन करना शुरू कर देंगी, और उनका फोन आते ही बनर्जी साहब को दौरे पड़ने लगेंगे। ....तुम ही ने आते-आते सवा-छः बजा दिये, और अब कहते हो कि जल्दी करो।"

"तो चलो, पहले तुम्हारे यहाँ ही चलते हैं। फिर उधर ही से चले चलेंगे। इतना वक़्त तो है। मगर तुम अब यह रेती रख दो। अहमद से कहो, सामान बन्द कर देंगे।"

नीता ने रेती रख दी, दोनों हाथों से बाल बराबर किये, पाँव ज़ोर-ज़ोर से ज़मीन पर मारे। पत्थर का बुरादा चप्पलों पर से झर कर ज़मीन पर बिखर गया। मूर्ति को कपड़ा उढ़ाते हुए, उसने अहमद को आवाज़ दी "अहमद भाई, जरा आप यह मेरा सामान बन्द कर देंगे? मैं चली जाऊँ? नरेन्द्र जल्दी मचा रहा है।"

अहमद ने सिर उठाये बग़ैर जवाब दिया—"हाँ-हाँ, बन्द कर दूँगा। तुम जाओ।"

दोनों बाहर निकले। टैगोर मार्ग से रिक्शा किया, और बीरबल साहनी रोड पर निकल आये। गोमती के किनारे सूखे थे। पानी बिलकुल छिछला दिखाई दे रहा था। डूबते हुए सूरज की रोशनी में धोबी जल्दी-जल्दी कपड़े इकट्ठे कर-कर के लादियाँ बना रहे थे। किनारे पर बहुत से नन्हें-नन्हें बच्चे बालू में एक मिट्टी का घड़ा औंधाये, उसके चारों तरफ फुदक-फुदक कर गा रहे थे:

> गगरी टूटी बैल प्यासा, अब तो आना मेघ रे—
> आना मेघ रे,
> धरती सूखी, बंजर खेती, आज किसान रुआँसा—
> आना मेघ रे।
> अब तो आना मेघ रे—मेघ रे....'

दूर आसमान के किसी किनारे से गड़गड़ाहट सुनाई दी। एक बार कौंधा-सा लपका, और फिर सन्नाटा हो गया। गोमती उसी तरह

धीरे-धीरे बह रही थी। रिक्शा आहिस्ता-आहिस्ता चल रहा था। बीरबल साहनी मार्ग के किनारे एक बड़ा-सा बरगद का पेड़ था। उसके नीचे कुछ लोग बैठे, कजरी गा रहे थे। एक कोने में आग जल रही थी, जिसके पास एक आदमी बैठा, लोहे की परात में आटा गूंध रहा था।

कजरी के बोल सुन कर दोनों चुप हो गये। जब रिक्शा वहाँ से गुजर गया, तो नीता बोली– "नरेन्द्र, हमारे शहर के लोग बड़े ही मौजी है। अब देखो, इन लोगों ने दिन भर पत्थर ढोये होंगे –यह सड़क बन रही है न – और इस वक़्त यह गर्मी देखो, यह मेहनत और थकान, और कैसा ढोल लिये गा रहे हैं! बारिश की कोई उम्मीद नहीं, फिर भी इनके यह आस-भरे गाने क्या अच्छे लगते हैं!"

नरेन्द्र बोला—"क्या कहना है। दिल वालों का शहर है लखनऊ।" फिर ज़रा रुक कर बोला —"मगर, नीता, मेहनत करने वाले शायद हर जगह ऐसे ही होते हैं।"

अब रिक्शा काठ का पुल उतर रहा था। ढलवान की बायीं तरफ़ वह सड़क थी, जो आगे जाकर जलसायीं घाट से मिल जाती थी। नीता ने हज़ारों ही बार इस सड़क को देखा था, मगर वह एक बार उसे कभी नहीं भूलती थी।

ख्वाब की तरह उसे वह शाम याद थी।

गोमती के किनारे पर दो अर्थियाँ एकसाथ जल रही थीं। दो जिस्म एक-दूसरे से लिपटे हुए आग की नज़र हो गये थे। शोलों की लपट कितनी तेज़ थी। उस दिन भी ऐसी ही हवा थी, जो लपटों को उड़ा रही थी। और अर्थियों से ज़रा दूर पर नवाब चचा जमीन पर मिट्टी में लोट रहे थे। नीता को उसके चचा गोद में लिए, एक तरफ़ चुपके खड़े थे। और उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है।

एक अजीब भयानक-सा ख्वाब था वह। शोलों की सायँ-सायँ, लकड़ियों में हवा की सीटियाँ। और जैसे उसके कान में कहीं दूर से

आवाज़ आ रही थी—'चलत पुरवाई सन स-न-न-न-न-न.....'

रिक्शा ढाल पर से उतर कर नज़ीर हसन की तरफ मुड़ गया।

२

गूंगे नवाब के हाते में तंग-सी गली। लखौरी इंटों के बने हुए पुराने, एक-से-एक मिले हुए मकानों की दीवारों पर से डूबते हुए सूरज की कुछ किरणें आहिस्ता-आहिस्ता उतर रही हैं। शाम हो रही है। एक लड़की हाथ में बड़ा-सा खरीदारी का थैला लिये, दूसरे हाथ में कुछ किताबें उठाये, गली के सिरे से मुड़ी, उसका जिस्म बहुत दुबला है, और क़द लम्बा। और लम्बे क़द के हिसाब से चेहरा बहुत छोटा और गोल, जो बहुत भोला-भाला लगता है। गेहुँआ रंग। बिल्कुल स्याह बालों में सीधी मांग। पीछे लम्बी-सी एक चोटी, बड़ी-बड़ी आँखें। हाथों में काँच की चूड़ियाँ। बाईं कलाई पर घड़ी। कानों में सोने के टाप्स। जिस्म पर सुर्ख किनारे की सूती साड़ी सुरमई रंग की, जो ज़रा मली-दली और दिनभर की पहनी हुई लगती है। सुरमई-सी ब्लाउज़। पाँव में ज़रा-सी एड़ी वाले सफ़ेद सैंडल।

तेज़-तेज़ चलती हुई वह आगे बढ़ती गई। दस-बारह मकानों के बाद उसने एक दरवाज़े पर दस्तक दी। अन्दर से पहले खाँसी का धचका सुनाई दिया। फिर पलँग चरचराने की आहट। जैसे कोई पलँग पर से उठ रहा हो। फिर चप्पलें घसीटने की सटर-पटर। और फिर एक कमज़ोर, मर्दानी आवाज़—"दीपा?"

लड़की बोली—"जी, बाबूजी!"

दरवाज़ा खुल गया। दीपा ने अन्दर जाकर दरवाज़ा सिर्फ भेड़ दिया। और वह बोली—"कैसे हैं, बाबूजी, आप? दवा पी थी?"

बूढ़ा आदमी आहिस्ता-आहिस्ता फिर जाकर पलँग पर लेट गया, और बोला—हाँ बेटी, पी थी। तीन बार पी। अब कल सुबह भर की और रह गई है। अब तो बहुत ठीक हूँ। दिन में सो भी गया था।"

दीपा थैले को दीवार से टिकाते हुए बोली—"ठीक है। कल की तो मैं छुट्टी ले आई हूँ। सुबह ही जाकर आपकी दवा ले आऊँगी।"

फिर उसने झुक कर, थैले में से कुछ सन्तरे और बिस्कुट का एक पैकेट निकाल कर पलँग के पास रखी मेज़ पर रखा, और खुद थैला उठा कर रसोईघर की तरफ चली। थैले में अभी और सामान था। सब्जियाँ और कुछ लिफाफे। बूढ़े ने लेटकर साँस दुरुस्त करते हुए कहा—"बेटी, तू फिर यह बिस्कुट और सन्तरे ले आई! अब तो मैं मामूली खाना भी खा सकता हूँ। आज मैंने लेटे-लेटे गली में संतरे वाले की आवाज़ सुनी थी, चार-चार आने के बेच रहा था। इसी भाव से लाई होगी, तो छः संतरे डेढ़ रुपये के हो गये।"

दीपा रसोई घर में स्टोव जलाती हुई बोली—"बस, आपकी यही बात मुझे अच्छी नहीं लगती, बाबूजी। क्या हो गया. जो डेढ़ रुपया खर्च हो गया? आपकी जान से बढ़ कर तो नहीं है।....आप ठीक तो ज़रूर हैं पहले से, मगर अभी तो आपको हल्की ही चीजें खानी चाहियें। डाक्टर सहाय कहते थे कि, ..."

दरवाज़े पर से आवाज़ आई—"अरे भई, कोई है?"

दीपा एकदम चौंक पड़ी। गर्दन टेढ़ी करके, उसने रसोईघर की खिड़की से बाहर दरवाज़े की तरफ झाँका। फिर खुश होकर बोली—"सलाम, महमूद भाई! आ जाइये। खुला है दरवाज़ा।"

एक आदमी अरज का पायजामा, मलमल का कुर्ता और उसके नीचे कुरुशिया की बुनी हुई फूलदार बनियान और रबर की चप्पलें

पहने, हाथ में एक बर्तन लिए अन्दर आ गया, और बोला—"जीती रह, भाई ! यह दूध ले आया हूँ। सब्जी-वब्जी लाना हो, तो ला दूं ? क्या अभी आई है ? इतनी देर में ?"

दीपा रसोई घर से बाहर निकल आई, और दूध का बर्तन लेते हुए बोली—"महमूद भाई, वहाँ वह टीचरों की मीटिंग थी न। और फिर कुछ देर सब्जी लेने में हो गई। स्टोव जला कर चाय का पानी रख ही रही थी, कि जब तक यह होगा, मैं मुँह-हाथ धो लूंगी, सब्जी काट लूंगी। चाय पीकर जाइयेगा। भाभी क्या कर रही हैं ?"

महमूद हँसा। "तेरी भाभी को तो दुनिया के दो ही काम हैं, भई बच्चों को पीटना, या गोश्त भूनना। सो वह गोश्त पका के बैठी हैं, कि 'दूध दे आओ, तो जल्दी से खाओ।' नहीं, बिटिया, चाय नहीं पियूँगा। दफ्तर से आते ही नींबू का शर्बत पिया था।....अब जाऊँगा।" और वह बाहर के बजाय कमरे की तरफ चला। "आपकी तबियत कैसी है, मास्टर साहब ?"

अन्दर जाकर, वह बूढ़े के पायंती बैठ गया।

"ठीक हूँ, बेटा।...यह बीमारी थोड़े ही है, यह तो बुढ़ापा है। अब तो दिन-ब-दिन ताक़त घटेगी ही, कोई बढ़ने से तो रही। बस, यही फिक्र है, कि मेरे जीते जी दीपा अपने घर की हो जाती, तो मैं शान्ति से मरता।"

रसोइघर में दीपा की त्यौंरी पर बल आ गये, मगर वह बोली कुछ नहीं। नल के पास आकर मुँह-हाथ धोने लगी।

महमूद ने दीपा को प्यार से देखा। "लीजिये, मास्टर साहब, आप क्यों मरने लगे ? अभी तो मेरे बेटे की बरात में चलना है।....और यह तो आप ही की जिद थी, कि दीपा ने बी० ए० किया है, तो ट्रेनिंग भी कर ले, और अपने पैरों पर खड़ी हो जाये। अब वह ट्रेनिंग करके काम करने लगी है, तो यह तो होना ही था।....वैसे क्या जल्दी है ? अभी कल की तो बात है, कि गुड़ियों का ब्याह रचाती थी। हो ही

जायेगी शादी ।...अच्छा, दीपा, मैं चला । वरना तू तो अपनी भाभी को जानती ही है, कि उसकी खूबसूरत नाक पर हर वक़्त गुस्सा रखा रहता है ।"

दीपा हँसने लगी । "आप नाहक मेरी भाभी को बदनाम करते रहते हैं । इतनी तो वह अच्छी हैं !"

महमूद दरवाज़ा खोलकर बाहर निकलते हुए बोला, "हाँ-हाँ, एक तू अच्छी है, और एक तेरी भाभी । बाकी तो सब दुनिया में यूँ ही हैं ।" फिर बाहर एक पाँव रखा, और कुछ रुककर बोला—"अरे, हाँ, मैं तो भूला ही जा रहा था । मास्टर साहब को कल डाक्टर के यहाँ ले जाना है ?"

"नहीं, महमूद, भाई ।" उसने कहा है, "अब दिखाने की ज़रूरत नहीं है । यही दवा एक हफ्ता और खायें ।"

"तो फिर दवा लानी है ?"

"वह मैं कल ले आऊँगी । कल की मैंने छुट्टी ले ली है न । और सुबह की दवा तो अभी है ।"

"अच्छी बात है ।....मास्टर साहब तो हैं ही भाग्य वाले । जिसके ऐसी बेटी हो, उसको हमारे ऐसे नालायक बेटों की क्या ज़रूरत ?" और वह दीपा को प्यार से देखता हुआ बाहर चला गया ।

दीपा ने दरवाज़ा बन्द किया, चाय बनाई, बाप को दी, खुद पी, फिर सब्जी बनाई, और रोटियाँ पका ही रही थी, कि दरवाजे पर दस्तक हुई—हल्की-सी दस्तक, दो बार । दीपा ने दस्तक को पहचान लिया, और उसके चेहरे पर एक गुलाबी झलक आई । रोटी उलट कर, उसने दौड़कर दरवाज़ा खोला । निहाल अन्दर आ गया । दीपा को देखकर मुस्कराया । "हैलो !"

दीपा भी मुस्कराई ।

वह बोला—"ताज़ी रोटी पकने की खुशबू क्या अच्छी होती है, दीपा !"

दीपा ने झेंप कर आटे से भरे हाथ पीछे कर लिये, और पीछे को उलटे पाँव खिसकने लगी।

निहाल बोला—"तुम्हारे यहाँ मीटिंग हो गई ?"

"हाँ। यही फैसला हुआ, कि हम चार-पाँच लोग मिलकर कांस्टी-ट्यूशन बना लें। फिर बड़ी मीटिंग बुलाई जायेगी।"

"ठीक है। मैंने शिफाअत साहब से तै कर लिया था, कि आज आठ बजे हम दोनों वहाँ आ जायेंगे। और भी कुछ टीचर आयेंगे। वह कह रहे थे, कि तुम्हारी उनकी बात हो गई है, कि किस-किस को बुलाया जाये।"

"हाँ।"

"तो, बस, ठीक है।....वैसे तुम ज़रा जल्दी तैयार हो जाओ। मैं तुम्हें कुछ दिखाने ले चलना चाहता हूं।"

"अच्छा !"

निहाल दरवाज़ा बन्द करके अन्दर चला गया, और मास्टर साहब के पलंग के पास कुर्सी पर बैठता हुआ बोला—"आज तो आप की तबियत बहुत ठीक मालूम हो रही है, मास्टर साहब !"

उन्होंने हाथ में पकड़ी हुई किताब निहाल को देख कर बन्द कर दी, उसे तकिये के नीचे खिसकाया, और लेटे-से ज़रा-सा उठ बैठे। "हाँ, बेटा, बहुत बेहतर हूँ। कल दीपा बता रही थी, कि आज इस वक़्त तुम और वह किसी टीचर के यहां जाने वाले हो।"

"जी हाँ। शिफाअत साहब के यहाँ जायेंगे।"

"अच्छा-अच्छा। वह भी मेरा शागिर्द है। मेरे सब से पहले बैच में था। उससे मेरी दुआ कहना। फिर मैंने उसके लड़के को भी पढ़ाया।....मगर बात क्या है ?"

"जी, वह प्राइमरी टीचरों का जो संगठन बना है न, उसके लिये कांस्टीट्यूशन बनाने के वास्ते कुछ टीचर वहाँ इकट्ठा हो रहे हैं। दीपा को ख़ास तौर पर बुलाया है। फिर बड़ी मीटिंग करके उसको मंज़ूर

कर लिया जायेगा। प्राइमरी टीचर्स यूनियन को रजिस्टर्ड करवाने से पहले उसका एक कांस्टीट्यूशन भी बनना ज़रूरी है। तो हम लोगों ने सोचा, कि कुछ लोग पहले मिलकर उसका ख़ाका बना लें।''

मास्टर साहब कुछ सोचते हुए बोले—''देखो, बेटा, ऐसी ही कुछ बात मुझे दीपा ने भी बताई तो थी। मगर—मुझे यह ख़्याल हुआ, कि दीपा तो अभी बिलकुल बच्ची है। और वह बड़ी हद तक अपनी माँ की तरह भावुक भी है।....मगर मैं तुम से ज़रा गम्भीरता के साथ पूछना चाहता हूँ, कि....''वह रुक गये।

निहाल चुप रहा।

''तो मैं यह पूछना चाहता हूँ, कि देखो, आखिर मैं भी तीस बरस टीचर रहा। मैंने अगर तीन नहीं तो दो पीढ़ियों को तो पढ़ाया ही होगा।....तुम्हें तो याद होगा, जब तुम और महमूद मुझसे पढ़ते थे।.... फिर मैंने महमूद के बेटे को भी पढ़ाया।....मैंने आज़ादी के आन्दोलन में भी हिस्सा लिया—चोरी-छिपे, मगर लिया तो।....मगर मुझे यह ख़्याल कभी नहीं आया कि टीचरों की यूनियन बने।..यूनियनें तो मजदूरों की बना करती थीं। अब इल्म के मैदान में भी बनने लगी हैं। ईमान की बात तो यह है, कि मुझे यह बात पसन्द नहीं है। और यह देख कर मुझे घबराहट-सी होती है।....मैं समझ नहीं पा रहा हूं, कि....''

और उन्होंने प्रश्नसूचक दृष्टि से निहाल को देखा, जो अब तक बिलकुल खामोशी के साथ उनकी बातें सुन रहा था। वह मुस्कराया, और ठहरे हुए लहजे में बोला—''मास्टर साहब, आज की बहुत-सी बातें आपकी समझ में आ जायें, अगर आप ज़रा-सा यह सोचें, कि जब आपने टीचरी शुरू की थी, तो गेहूँ का भाव क्या था, और आज जब कि दीपा ने टीचरी शुरू की है, तो क्या है।''

मास्टर साहब कुछ कसमसा कर बोले—''हाँ, वह ठीक है। मगर, बेटे, यह भी तो सोचो, कि तमाम सहूलतों के बावजूद हम गुलाम थे, और दीपा आज़ाद है। इस वक़्त हम लाख माली मुसीबतों में गिरफ़्तार

सही, मगर सिर उठा कर तो चलते हैं ।....तो फिर हमें इस गौरव की कुछ क़ीमत भी तो अदा करनी चाहिये ।"

"लेकिन इसकी क़ीमत सिर्फ आप और आपके जैसे लोग क्यों अदा करें ? अगर आप भी आज़ाद हिन्दुस्तानी हैं, और यह सेठ घेसूमल भी, तो क्या वजह है, कि उसका जाहिल लड़का मोटर में दनदनाता फिरे, और आपकी पढ़ी-लिखी लड़की पैदल स्कूल जाये ? क्या सबब है कि उसके यहाँ सिर्फ देशी घी खाया जाये, और आप दो संतरे खरीदते हुए भी चार बार सोचें । आप ने उस लाठी-चार्ज का हाल पढ़ा था, जो पिछले महीने प्राइमरी टीचरों के शान्तिपूर्ण जुलूस पर किया गया था ?"

मास्टर साहब चुप हो गये थे । उनकी वीरान नज़रें मेज़ पर रखे हुए संतरों पर जम गई थीं, जो उनकी प्यारी बेटी ने अपने गाढ़े पसीने की कमाई से उनके लिये खरीदे थे ।

निहाल ने फिर कहना शुरू किया—"और क्या वजह कि कानपुर के मिल मालिक आज़ाद हिन्दुस्तान की आज़ाद हुकूमत का जायज़ टैक्स, करोड़ों रुपया, बरसों अदा न करें, और प्राइमरी टीचर अगर पाँच रुपया महीना बढ़ाने के लिये भी शांतिपूर्ण जुलूस निकालें, तो उन पर यह कह कर लाठी-चार्ज किया जाये, कि आप लोग शांति भंग कर रहे हैं ?....और गुलामी क्या सिर्फ ग़ैर-मुल्कों की होती है, मास्टर साहब ? ज़ुल्म और कठोरता क्या सिर्फ गैर-मुल्की ही करते हैं ? अगर अपने भी वही करें, जो वह दूसरे करते थे, तब क्या कहियेगा ? रूस का ज़ार कौन-सा रुसियों के लिये ग़ैरमुल्की था ?"

मास्टर साहब निरुत्तर-से होकर बोले—"बेटा, मैं तुम्हारी और दीपा की बहुत-सी बातों को ठीक मानता हूँ । मगर यह तो तुम दोनों को मानना ही चाहिये, कि आजकल लोग मेहनत ही नहीं करना चाहते । हम ने तो ज़िन्दगी भर खुद भी मेहनत की, और तुम लोगों को, अपने शागिर्दों को और खुद अपनी बच्ची को भी यही सिखाया, कि...."

"माफ़ कीजियेगा। मैं आप की बात काटता हूँ। लेकिन अगर आपने मेहनत की, और मेहनत पर यक़ीन रखते हैं, तो फिर आप में और बाकी मेहनतकशों में क्या फर्क हुआ ? सिर्फ़ क़िस्म का ही न ? फिर क्यों न टीचर्स भी अपनी यूनियन बनायें, और क्यों न वह भी अपने हक़ के लिये मज़दूरों की तरह लड़ें !"

"हो सकता है, कि तुम ठीक ही कहते हो। मगर मुझे तो यह दिखाई देता है, कि अपने हक के लिये लड़ने को तो सब तैयार हो जाते हैं, फर्ज़ कोई अदा नहीं करता।....काम को काम समझ कर नहीं, वेगार समझ कर किया जाता है आजकल।...."

"माफ़ कीजियेगा, मास्टर साहब, मैं आपकी बात से पूरा इत्तफाक नहीं कर सकता। जो सूरतेहाल आप ने बयान की वह बहुत हद तक सही है। मगर ऐसा है, क्यों ? इसलिये न कि लोगों को साफ़ दिखाई दे रहा है, कि जो मेहनत नहीं कर रहे हैं, वह मौज कर रहे हैं, क्योंकि वह खुशामद कर रहे हैं, रिश्वत दे रहे हैं, गठबंधन, साजिशें और ब्लैकमेल कर रहे हैं। और जो मेहनत कर रहे हैं, उनका पसीना दौलत बन-बन कर पूंजीपतियों की तिजोरियों में इकट्ठा हो रहा है। गोया कि मेहनत करने वाले बेवकूफ़ ठहरे।"

"मगर फिर तुम क्यों इतने ख्याल, इतनी ज़िम्मेदारी और मेहनत से काम करते हो, दीपा क्यों चक्की में पिसती रहती है, जब कि तुम लोग यह सब-कुछ समझते हो ?"

निहाल मुस्कराया, और बड़े प्यार से बोला—"इसलिये, बाबू जी, कि मेरे और दीपा जैसे लोग ही इन हालात को बदलेंगे।...और हम दोनों ही नहीं, हमारे जैसे लाखों-करोड़ों लोग हैं। अगर न होते, तो समाज का यह ढाँचा ढह न पड़ता ? और अब हम मेहनतकश, जिन में मुझ जैसे इंजीनियरों से लेकर ईटें ढोने और तार खींचने वाले मज़दूर हैं, दीपा जैसे टीचरों से लेकर स्कूलों में झाड़ू देने वाले जमादार और स्कूलों की बसें चलाने वाले ड्राइवर सब शामिल हैं, अपनी मेहनत का

पूरा मुआवज़ा लेकर रहेंगे। हम तमाम उन साधनों पर कब्ज़ा करके रहेंगे, जिनसे हमारी मेहनत उनके लिये दौलत पैदा करती रही अब तक।"

इसी वक़्त दीपा एक हाथ में चाय की प्याली और दूसरे हाथ में एक छोटी-सी प्लेट में दो पूरियाँ और आम के अचार की एक फाँक लिये अन्दर आई, और दोनों चीजें मेज़ पर रखते हुए बोली—"अच्छा-अच्छा, अब लेक्चर थोड़ी देर के लिये खत्म कर दीजिये, यानी मेरा मतलब है, मुलतबी कर दीजिये। नाश्ता कीजिये ज़रा।....बाबू जी, आप के लिये संतरा छील दूं?"

निहाल मुस्कराया, और खड़े होकर प्लेट लेते हुए बोला—"मैं तो चाय पी कर आया था। मगर, खैर, तुम्हारे हाथ की चाय बहुत अच्छी होती है। बाबूजी क्या खायेंगे?"

"खा तो यह भी सकते हैं, पर संतरा ज़्यादा ठीक रहेगा। बाबूजी, आप कुछ बोले नहीं। संतरा छील दूं?"

मास्टर साहब जैसे खो-से गये थे। चौंक कर बोले—"नहीं, बेटी! अभी कुछ नहीं खाऊँगा।"

दीपा मुड़ी। "अच्छा, तो आप खाइये। तब तक मैं रसोईघर बन्द करके ज़रा साड़ी बदल लूं।"

निहाल ने चाय पीते-पीते, झुक कर अपने पोर्टफोलियो में से दो-तीन किताबें निकालीं, और मास्टर साहब की तरफ़ बढ़ाते हुए बोला—"आप ये पढ़ियेगा। लेनिन के कुछ लेख हैं।"

मास्टर साहब इस दरमियान चुपचाप सोच में डूबे हुए थे। हाथ बढ़ा कर उन्होंने किताबें ले लीं, और ग़मगीन आवाज़ में बोले—"आज़ादी की लड़ाई के ज़माने में कई बार ऐसा मौक़ा आया, कि हम लोगों ने अपना सब-कुछ लुटा दिया। दीपा की माँ ने अपने सारे जेवर चंदों में दे दिये।....जेवर ही कितने थे?....खैर। मगर हम यही सोचते रहे, कि हम अपने बच्चों के लिये एक आज़ाद और खुशहाल

भविष्य बना रहे हैं। हमारी ज़िन्दगियों ने हर तरह की महरुमियाँ सही, हमारी आइन्दा पीढ़ियाँ तो न जाने हमारे बच्चों की क़िस्मत कैसी है? मेरी बच्ची दीपा....भला मैंने कभी यह सोचा भी था, कि—"

निहाल बोला—"मास्टर साहब, आप उन बच्चों को देखिये, जिनके पास एक वक़्त खाने, तन ढकने और सिर छुपाने का ठिकाना नहीं, उन नौजवानों को देखिये, बेशुमार नौजवानों को, जिनके पास रोज़गार नहीं; उन लोगों को देखिये, दस-दस साल नौकरी कर चुके, मगर आज भी उनको कोई गारन्टी नहीं कि कल वे निकाल न दिये जायेंगे।....मैं और दीपा तो लाखों से बेहतर हालत में हैं, बाबू जी। ....देखिये।"

कमरे में आती दीपा झेंप गई। उसने चौड़े लाल किनारे की बारीक सफ़ेद साड़ी पहनी थी, और सफ़ेद ब्लाउज़ और नई चप्पलें, जो उसने इसी महीने की तनख़्वाह मिलने पर एक सेल में से खरीदी थीं। हाथ में चमड़े का छोटा-सा शान्तिनिकेतन पर्स। सादे बने हुए बाल। आँखों में काजल की हल्की-सी लकीर। पाउडर की हल्की-सी पर्त।

मास्टर साहब बेटी को देख कर मुस्कराये, फिर सर झुका कर एक आह भरी, और धीमे से बोले - "दीपा कभी-कभी बिलकुल अपनी माँ की तस्वीर लगती है।" फिर पल भर रुक कर बोले—"मैं दीपा की माँ के लिये कुछ नहीं कर सका। मैंने उसे ख़्वाबों के अलावा कुछ नहीं दिया। तभी वह इतनी जल्दी मर गई।....भला ख़्वाबों पर कौन जी सकता है?"

दीपा और निहाल ने एक-दूसरे की तरफ़ देखा। वे चुप रहे।

फिर निहाल कुर्सी से उठा, और अपना दाहिना हाथ बढ़ा कर उसने मास्टर साहब का दाहिना हाथ पकड़ा—उनका बूढ़ा सूखा हाथ—और बोला—"आप घबराइये नहीं, मास्टर साहब। हम आप ऐसे बुजुर्गों की परम्पराओं को मरने नहीं देंगे। हममें से कुछ सिरफिरों ने मेहनतकश इन्सान की मेहनत और नई ज़िन्दगी की हिफाज़त को अपनी

मंजिल बनाया है। सो इसके लिये हम लड़ेंगे, चाहे इसमें हमारी जान ही क्यों न चली जाये।" फिर ज़रा रुक कर बोला—"देर सिर्फ़ इतनी है, कि जनता की समझ में आ जाये कि क्या करना है। फिर कैसे करना है, यह रास्ता तो लोग खुद ही निकाल लेंगे।" फिर ज़रा रुक कर बोला—"माफ़ कीजियेगा, मैं ज़रा जोश में आ गया।....और इन बातों में मैंने यह तो पूछा ही नहीं, कि आप की दवा वगैरा...." और उसने दीपा की तरफ देखा।

मास्टर साहब बोले—"दवा तो अभी कल तक की है। फिर दीपा ने कल की छुट्टी ले ली है। सुबह ही जाकर ले आयेगी।"

"वैसे शाम को तो मैं भी आ सकता हूँ। आजकल बहुत सुबह मेरी ड्यूटी गऊघाट पर लगती है। बल्कि हो सकता है, कि मुझे रात वहाँ ही रहना पड़े। पानी या तो बरसा ही नहीं था, और अब बरसा है, तो....इस वक़्त भी बाहर ज़रा-ज़रा बारिश हो रही है।"

दीपा बोली—"आपको जब सहूलियत हो, तब आइयेगा। बाबूजी, मैं महमूद भाई से कहे जा रही हूँ, कि थोड़ी देर को आपके पास आ बैठेंगे। मैं नौ बजे तक आ जाऊँगी।"

"अच्छा, बेटा।"

३

चार-पाँच दिन की मूसलाधार बारिश के बाद आज आसमान ज़रा खुला था। मगर फिर भी बूंदाबाँदी हो रही थी। नवाब पुत्तन साहब नाश्ता करके उठ ही रहे थे, कि बेगम ने पानदान अपनी तरफ़ खींचा, और

गोटा लगी, लाल टूल की भीगी हुई साफ़ी में से दो पान छाँट कर गिलोरी बनाने ही लगी थीं, कि फिर ज़ोर से बिजली चमकी। बादल अभी तक घिरे थे, सूरज छिपा हुआ था, हवा में ठंडक और ताज़गी थी। ऐसा लगता था, कि कुछ देर रुक कर बारिश फिर आयेगी।

बेगम गिलौरी बनाती हुई बोलीं—"अरे, अब आप इस पानी-बूंदी में कहाँ जा रहे हैं ?"

"बेगम, वह ज़रा मोटर ले जा रहा हूँ। राजनरायन ने जुमेरात को कहा था, 'कि कल दे दीजिये, तो इतवार तक ठीक कर दूंगा।' मगर पानी ने दम ही नहीं लेने दिया।"

"उस बदबख्त का कुछ एतबार भी है ? आये दिन मोटर बनाता है। ज़रा-से काम के लम्बे-लम्बे बिल बना के भेज देता है। और हालत फिर वही-की-वही। ...मैं कहती हूँ, आप जी कड़ा करके नई मोटर क्यूँ नही ले लेते ?"

उन्होंने गिलौरी बढ़ाई। नवाब साहब ने गिलौरी ली, और बेगम की उंगलियाँ ज़रा दबा दीं। बेगम झेंपीं। वह मुस्कराये। दालान से होते हुए बाहर ड्योढ़ी में निकलकर सीढ़ी उतर रहे थे, कि कामनी बेगम चादर ओढ़े, जूतियाँ सटसटाती, सामने से निकलीं। नवाब साहब को देखा। "बन्दगी, सरकार।"

"तसलीम, कामनी बेगम ! भई, हमारे कुर्ते कब दीजियेगा ?"

"गरीबपरवर, देख लीजिये, धोबी के यहाँ ही ले जा रही हूँ। परसों पहुँच जायेंगे।"

"हाँ, भई, पहुँचवा दीजियेगा। वरना क्या जाड़ों में पहनेंगे कुर्ते ?"

"अरे नहीं, सरकार, अल्लाह रखें। अभी पहनियेगा।" और वह जल्दी-जल्दी चलती हुई आगे बढ़ गई।

नवाब साहब हाते में खड़ी मोटर के पास आये। बड़ा-सा हाता था, जिसमें बहुत-सी कोठरियाँ थीं, कुछ छप्पर, कुछ-बाड़े। इन सब में

किरायेदार थे धोबी, भंगी, गरीब विद्यार्थी, एक पंजाबी शरणार्थी खानदान, जिसकी औरतें पापड़ और बड़ियाँ बनाती थीं, और मर्द कपड़ा बेचते थे, एक आइसक्रीम बेचने वाला, एक सब्जी वाला, एक सिगरेट-माचिस का स्टाल, एक इसाई प्राइमरी टीचर और उसका खानदान। हवेली क्या थी, एक छोटा-सा मुहल्ला था, जिस में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, इसाई, सब रहते थे। इस वक़्त भी कोई नल पर नहा रहा था, किसी ने कपड़े धो कर फैलाये थे, कोई अपनी साइकिल साफ़ कर रहा था, कोई अपने बच्चों को स्कूल ले जा रहा था। दो-तीन घरों में ट्रांज़िस्टर बज रहा था, और सभी में से बेगम अख्तर की दर्द-भरी आवाज़ गूंज रही थी :

छाये रही काली घटा जिया मोरा लहराये है। ...

नवाब साहब ने मोटर के इंजन का ढकना खोला, और गुनगुनाने लगे—'ऐ मसीहा, कुछ तो बोलो, क्या तुम्हारी राय है।' फिर झुक कर इंजन में न जाने क्या खड़बड़ करने लगे। ढकना बन्द करके, उन्होंने मोटर का दरवाज़ा खोला, बैठे, बार-बार स्टार्ट करने की कोशिश की, ...मगर इंजन हर बार कराह कर आह भरता हुआ चुप हो जाता। उन्होंने गर्दन बाहर निकाल कर आवाज़ दी—"अरे, भई लाडले मियाँ, ज़रा यहाँ आइये।"

दूर से एक विद्यार्थी दौड़ा, फिर एक सिख नौजवान नल पर से रवाना हुआ, दर्जी मशीन रोक कर निकल आया, कुछ बच्चे लपके। गाड़ी को धक्का लगाना शुरू हुआ। वह हाते की ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर से उछलती, लड़खड़ाती, टूटे हुए फाटक से बाहर निकल कर आई० टी० कालेज की तरफ-बढ़ने लगी। आई० टी० का चौराहा घूम कर, वह यूनिवर्सिटी रोड पर हो ली।

गोमती बढ़ कर डालीगंज के किनारों को छूती हुई आहिस्ता-आहिस्ता डायर मेकीन की तरफ बढ़ रही थी। मंकी ब्रिज के नीचे घाटों की सीढ़ियाँ पानी में डूबी हुई थीं, और पानी यूनिवर्सिटी के तमाम

मैदानों में मर चुका था।

नवाब साहब ने मोटर को तेज़ किया। यूनिवर्सिटी के विभाग एक-एक करके गुज़रने लगे। फिर मोटर मंकी ब्रिज पर जाने के लिये आर्ट कॉलेज की सड़क के सामने से गुज़र ही रही थी, कि धीमी हो गई। उस सड़क पर आर्ट कालेज की तरफ़ से मिस्टर बनर्जी हाथ में कुछ काग़ज़ और फाइलें लिये हुए खरामा-खरामा चले आ रहे थे।

नवाब साहब ने मोटर धीमी की, और हाथ हिलाया। "आदाब बजा लाता हूँ। कहाँ के इरादे हैं?"

"ज़रा काफ़ी हाउस तक जा रहा था," बनर्जी साहब क़रीब आकर बोले।

"आइये। मैं भी उधर ही चल रहा हूँ। पहले ज़रा ड्रग-रिसर्च चलते हैं। वहाँ एक साहब से कुछ काम है। पाँच मिनट लगेंगे। आपको कोई जल्दी का काम तो नहीं है?"

बनर्जी सिगरेट निकाल कर सुलगाते हुए बोले—"अरे, नहीं साहब। बस एक प्याला काफ़ी पीने जा रहा था।" फिर उन्होंने सिगरेट का एक कश खींचा। "इधर कल से तो बारिश कम हो गई है, मगर दरिया का रंग तो बड़ा बुरा नज़र आ रहा है, नवाब साहब। सुनते हैं, कि डालीगंज और हुसैनाबाद में तो बड़ी दूर-दूर तक पानी घुस गया है।"

नवाब साहब ने गाड़ी को छतरमंजिल की तरफ मोड़ा। "गोमती बड़ी तेहे वाली दरिया है, मियाँ।" फिर ज़रा रुक कर बोले—"भाई, वह हसीन औरत क्या और वह दरिया क्या, जिसमें दमखम न हो?.... कहिये। आपकी नुमाइश कब होगी? कुछ मिलेगा देखने के क़ाबिल?"

"जी हाँ। वैसे अबके तस्वीरों से ज़्यादा मूर्तियाँ देखने के लायक़ हैं। नीता ने अबके कई बाँकी मूर्तियाँ निकाली हैं। उनमें से दो को तो इनाम मिलना ही चाहिये। अब मैं कह नहीं सकता। आजकल यहाँ के किसी हल्क़े में भी कोई ऐसा नहीं है, जो उनको दाद दे सकेगा।.... खैर!...."

नवाब साहब ने को मोटर छतरमंजिल में मोड़ते हुए एक आह भरी। "नीता को तो संगीत सीखना चाहिए था। उसका बाप कमउमरी में खत्म हो गया, वरना क़यामत ढाता। क्या गला था ज़ालिम का !....बनर्जी साहब, मुझे अब तक कभी-कभी यक़ीन नहीं आता, कि मनोहर की आवाज़ हमेशा के लिये बन्द हो गई।" उन्होंने फिर एक गहरी आह भरी।

मोटर रोक कर, वह सीढ़ियाँ चढ़ते हुए बोले—"आज मेरा इरादा है, कि वापसी पर शाह नजफ़ से ज़रा वज़ीर हसन रोड हो लूंगा।.... नीता को कई दिन से नहीं देखा।"

वह एक कमरे की तरफ बढ़े ही थे कि एक नौजवान अगले कमरे से निकला। नवाब साहब को देख कर, उसकी बाछें खिल गयीं।

"नरेन्द्र, कैसे हो बेटे ? तुम्हें बहुत दिनों के बाद देखा। कुछ परेशान-से लगते हो। ख़ैरियत तो है ?"

"जी हाँ। वैसे तो सब ख़ैरियत है, लेकिन पानी जिस तरह बढ़ रहा है, उससे हम लोगों को बड़ी तशवीश है। पीछे के कमरे सब खाली किये जा रहे हैं।"

"अरे, नहीं, मियाँ। गोमती यूँ ही हर साल चुहलें करती है। .. और फिर तुम नौजवान अगर उसके नखरे बरदाश्त न करोगे, तो कौन करेगा ?.... अरे मियाँ, एक ज़माना था कि बढ़ी हुई गोमती में कूद जाते थे हम।....वैसे हिम्मत अब भी रखते हैं, मगर अब क्या है ? ये झुरिया हैं, हाथों पर।... तुम्हें कभी तैरने का शौक नहीं रहा, मियाँ ? ऐं, न बन्दूक का, न संगीत का ? ख़ैर, जो शौक है, वही करो। अल्लाह उसी में बरकत देगा।....तो कोई घबराने की बात नहीं है, मियाँ बाजुओं में ताक़त हो, तो आदमी पानी तो क्या, आग से भी पार उतर जाये।"

उन्होंने नरेन्द्र का कन्धा थपथपाया, और एक कमरे में घुस गये। बनर्जी भी उनके पीछे घुसे। अन्दर बड़ी-सी मेज़ के पीछे एक डॉक्टर बैठा था।

कोई पैंतीस-चालीस साल की उम्र। कनपटियों पर दो-चार बाल सफेद हो चुके थे। गुदगुदे जिस्म पर मामूली-सी ढीली-ढाली-सी खाकी पतलून, ऊपर डॉक्टरों वाला कोट। नवाब साहब को देख कर, वह उठ खड़ा हुआ, "तस्लीमात अर्ज़ है। बड़ी सुबह तशरीफ लाना हुआ ?"

नवाब साहब ने कोने की जेब में से एक कागज़ निकाल कर उसकी तरफ़ बढ़ाया, "मियाँ, यह आपने जो दवा लिखी थी, यह तो कहीं मिल ही नहीं रही है। अब बताइये क्या किया जाये ?"

डाक्टर मुस्कराया। "नवाब साहब, पहले तो डॉक्टर सक्सेना के दवाखाने में देख लीजिये। अगर वहाँ न मिले, अग्रवाल ब्रदर्स के यहाँ ज़रूर मिल जायेगी।"

नवाब साहब डिबिया में से गिलौरी मुँह में रख कर, इलाइची का बटुआ खोलते हुए बोले—"भई, मैं तो जानबूझ कर डॉक्टर सक्सेना के यहाँ नहीं गया, कि वह दवा देगा बाद में, और पॉलिटिक्स बघारेगा पहले। और, भई, जो आजकल उसका दाढ़ीवाले मौलानाओं से खुलूस हो गया है, उससे मियाँ मुझको बड़ी सख्त उलझन होती है।"

बनर्जी हँस कर बोले—"मगर, नवाब साहब, कुछ भी कहिये, सक्सेना है यारों का यार।। अब उसे छोड़ा भी तो नहीं जाता।"

नवाब साहब मुस्कराये। "और फिर हसीन आदमी ठहरा। क़सम खुदा की, ग़ालिब बिल्कुल ठीक कह गया है, कि नादिरशाह का इतना खौफ़ नहीं, जितना हसीन आदमी का डर होता है, ...तो फिर ऐसी सूरत नज़र आ रही है, मियाँ, कि उसके यहाँ जाना ही पड़ेगा। ऐं ? क्यूँकि अग्रवाल के यहाँ तो कोई हिसाब नहीं। खुदा जाने कितने दाम माँगेगा। दुग्गल, ब्रिटिश, जेम्स, ये सब मैं देख चुका।"

नवाब साहब सीढ़ी पर से उतर ही रहे थे, कि नरेन्द्र तेज़-तेज़ चलता हुआ गैलरी में से निकला। "नवाब चचा, एक मिनट रुक जाइये। मैं आपको अपने दो दोस्तों से मिलाना चाहता हूँ।.. यह बोस है, जो अभी कलकत्ता से बदल कर यहाँ आया है। और यह निहालसिंह हैं। ये

दोनों इंजीनियर हैं।"

नवाब साहब ने हाथ बढ़ाया। "माशा अल्लाह ! माशा अल्लाह ! आप लोगों से मिल कर बड़ी खुशी हुई।" और उन्होंने अपने सीने पर हाथ फेरा।

दोनों ने नवाब साहब को आदाब किया।

नरेन्द्र बोला—"नवाब चचा, निहालसिंह यहीं काम करता है। और इसने दरियाओं के बाँध पर खास ट्रेनिंग हासिल की है। बोस ने भी यहीं ट्रेनिंग ली है। गऊघाट पर हैं।"

नवाब साहब दुआयें देते हुए बोस से मुखातिब हुए, "तौबा कहिये, कि बड़े मौक़े से आप यहाँ मुक़र्रर हुए। ...देखा आपने, हमारी गोमती कैसा ज़ोर बाँधे हुए है। कैसा दीवानावार पुलों और बाँधों से टकरा रही है ?"

बोस तो मुस्करा के चुप रहा, मगर निहालसिंह गम्भीरता से बोला—"नवाब साहब, यह जो सिकन्दरबाग वाला बाँध है, उसको पानी से बहुत सख्त खतरा है। मैं कल ही वहाँ गया था। बोस और मेरा एक और इंजीनियर दोस्त इम्तेयाज़ भी मेरे साथ था। हम लोग उसी तरह भीगते हुए बाँध का मुआयना करते रहे। ....और हमारा ख्याल है, कि अगर तीन-चार दिन तक गोमती की धारा का यही हाल रहा, तो यह बाँध जवाब दे जायेगा।"

नवाब साहब चौंक पड़े। फिर ज़रा सँभल के बोले—"खुदा न करे, मियाँ। कैसा बदख्याल मुँह से निकालते हो। ....ऐसा नहीं होगा। यह ३२ की बाढ़ में नहीं खिसका, तो अब क्या खिसकेगा ?"

"मगर, नवाब साहब, अबके हालात बिलकुल भिन्न हैं। दरिया की सतह ऊँची हो गई है। कैच फिट्स में पानी की धारा बहुत तेज़ है। और बहाव की रफ्तार सन् ३२ से बहुत ज़्यादा है। हम लोगों ने कल ही रात भर जाग कर, अपना हिसाब बनाकर यह अन्दाज़ा लगाया है, कि अगर परसों से यह धारा कम हो गई, तब तो ठीक है। और

अगर यही रही, तो पूरा खतरा है, कि यह बाँध नहीं ठहरेगा। ....और धारा के कम होने की कोई उम्मीद नज़र नहीं आती।"

"तो, मियाँ, आप लोग हुकूमत को इस खतरे से आगाह करें।"

"जी हाँ। हम लोगों ने सोचा है, कि कल चीफ़ इंजीनियर के यहाँ जायेंगे।"

"मुनासिब है, निहायत मुनासिब है।" कहते हुए नवाब साहब सीढ़ियाँ उतर कर, ह्वील पर बैठ गये। मोटर ने फिर नखरा शुरू किया।

तीनों नौजवान उतरे, और फाटक तक मोटर को ढकेला, तो वह दो-चार हिचकोले खा के चल पड़ी, और चलते-चलते लालबाग की एक पतली-सी गली में घुस गई। सामने एक बड़ा-सा दवाखाना था। अन्दर बड़े-से कमरे में डॉक्टर सक्सेना बैठे थे। साँवला रंग, लम्बा क़द। ऐनक लगाये, मुस्करा-मुस्करा कर वह मेज़ के पास बैठे एक दाढ़ी वाले मौलाना से न जाने क्या बातें भी करते जाते थे, और एक मरीज़ की पीठ भी ठोंक-बजा के देखते जा रहे थे। नवाब साहब सीधे दवाखाने में गये, और दवा लेकर लौट ही रहे थे, कि डॉक्टर सक्सेना ने उधर खुले किवाड़ में से उनको देख लिया। वहीं से बोले—"बन्दगी, नवाब साहब। अब लखनऊ में भी यह बेमुरौवती होने लगी, कि आप मुझे देखें और पीठ मोड़ कर निकल जायें?"

नवाब साहब दरवाज़े में झाँक कर बोले—"भाई, मैंने मौलाना सैफी की दाढ़ी देखी, तो मैं ज़रा चौकन्ना हो गया, कि मालूम नहीं, तुम लोग एक साजिश कर रहे हो। मैं भोला-भाला आदमी ख्वाह-मख्वाह फँस जाऊँ।.... और मोटर में बनर्जी भी बैठे थे। उनकी वजह से और भी ज़रा जल्दी थी।"

डॉक्टर सक्सेना हँसने लगे। उनके बराबर-बराबर जमे हुए खूबसूरत दाँत उनके साँवले होठों पर यूँ चमकने लगे, जैसे सोंधी मिट्टी की मुंडेर पर खिले हुए बेले के फूल! कुर्सी घसीट कर बोले "आइये,

आइये। कोई साजिश नहीं हो रही है। वह पेपर मिल के पीछे वाली बस्ती में पानी चला गया है न। तो वहाँ से कुछ लोगों को हटा कर फैजाबाद रोड पर एक कैम्प लगाया गया है। उन्हीं को मदद पहुँचाने की बातें हो रही थीं। मौलाना की रिपोर्ट है, कि वहाँ जन-संघियों ने काम शुरू भी कर दिया है।....अगर ऐसा है, तो साहब, अगले एलेक्शन में बड़ी गड़बड़ी होगी।"

नवाब साहब की त्यौंरी पर बल आ गया। "बस, तुम्हारी यही बात मुझे बुरी लगती है, सक्सेना। जो काम करोगे, एलेक्शन को सामने रख कर। ....अब तुम तरक्की-पसन्द लोग भी जनता की मुसीबत से ज्यादा एलेक्शन की फिक्र में घुले जाते हो। यह तो आसार अच्छे नहीं।....गोया जनसंघ वहाँ काम न करता, तो तुम भी न करते। ऐं?...और मौलाना सैफी तो यह सोचते होंगे, कि एक तरफ़ वहाँ जनसंघ का झंडा गड़ा है, तो दूसरी तरफ़ जमाअत इस्लामी का गड़ जाये।....बस, फ़तेह-ही-फ़तेह है।"

मौलाना अपनी कुर्सी पर कसमसाये, "जी नहीं, नवाब साहब। ऐसी बात तो नहीं है।...."

"ऐसी बात नहीं है, तो आप लोगों ने शहरियों की कोई मिली-जुली कमेटी बनाई है?"

"जी हाँ, वही तो बता रहे हैं," सक्सेना बोले "आप तो पूरी बात सुनते नहीं, भाई साहब। बस फटकारने लगते हैं। वही कमेटी बन रही है। आप उसके मेम्बर बनेंगे?"

"मैं ज़रूर बनूंगा। वैसे डालीगंज में तो मैंने एक हफ्ता हुआ, कमेटी बना दी है, जिसका मैं सदर हूँ। मगर वहाँ मैंने यह शर्त लगा दी है, कि कोई अपनी पार्टी का झंडा लेकर न आये। और हर काम करने वाला मेरी कमेटी के मेम्बरों से पूछ कर काम करे। यह नहीं कि रक़म जमा करे शहरियों की कमेटी और प्रचार हो सियासी पार्टियों का। गोया गरीबों की यह मुसीबत भी एलेक्शन का कोई प्लेटफ़ार्म है।

गोया कर्ज़ दिया जा रहा है, तो वसूला जाने लगे। ...अच्छा, तो अब मैं चलूँ, भई। वह बनर्जी मोटर में सूख रहा होगा। मेरी मोटर में छत तो है नहीं। ...और देखिये, फिर फुहार पड़नी शुरू हो गई।"

"अच्छा, तो यह फार्म मेम्बरी तो भर दीजिये।"

"अच्छा।"

नवाब साहब ने अपना नाम-पता भरा, दस रुपये निकाल कर सक्सेना के हाथ में दिये, और बोले "भई, वह बेगम मतीन ने भी टेलीफोन किया था, कि उन्होंने जो सैलाब कमेटी बनाई है, उसकी कल ग्यारह बजे मीटिंग है। मैंने कहा था, कि तुम्हें भी लेता आऊँगा। ...चलोगे न ?"

"जी हाँ। चला चलूंगा।"

मोटर हलवासिया मार्केट के सामने से होती हुई हज़रतगंज पार करती हुई, नरही के नुक्कड़ पर काफी हाउस के सामने रुक गई। नवाब साहब और बनर्जी साहब उतरे, और काफी हाउस में दाखिल होते ही एक मेज़ पर बैठे हुए लोगों में घिर गये। नवाब साहब ने एक बैरे को बुलाया, और दस हॉट काफियों का आर्डर देते हुए, आहिस्ता से बोले—"इस बैरे को देख कर मजाज़ मरहूम कितना याद आते हैं। रहे नाम अल्लाह का !"

काफी हाउस में लोग ऊँची आवाज़ में बात कर रहे थे। सियासत, अदब, आर्ट, स्कैन्डल—हर क़िस्म की गुफ्तगू। लेकिन घूम-फिर कर हर मेज़ पर बात एक ही मौज़ू पर लौट आई थी –गोमती अबके क्या रंग दिखायेगी ?

बनर्जी काफी हाउस में रुक गये। नवाब साहब उठे। और जब वह बाहर निकल रहे थे, तो उन्होंने देखा कि वह नौजवान इंजीनियर निहालसिंह दूर एक कोने की मेज़ पर अकेला बैठा काफी पी रहा था।

नवाब साहब ने अपनी मोटर का रुख वज़ीर हसन रोड की तरफ़ कर दिया।

४

"मैं कहती हूँ, तुम नीता को कब तक पढ़ाये जाओगे ?....और यह कोई पढ़ाई भी क्या, कि मूर्तियाँ गढ़े चली जा रही है ? क्या ज़िंदगी भर यही करती रहेगी ? अगर यह रिश्ता हाथ से निकल गया, तो इतना अच्छा घर नहीं मिलेगा," चाची बोलीं और फिर वह ज़मीन पर कपड़ा रगड़ती हुई जमादारिन से मुखातिब हो गयीं—"यह कैसे लगा रही है कपड़ा, कि चमक तो दिखाई ही नहीं दे रही है ? तुम लोगों का मेहनत करने को तो जी ही नहीं चाहता । अभी पेशगी लेना हो, तो देखो, क्या दौड़-दौड़ कर काम करती हो ।...."

सिन्हा साहब नहा-धोकर आरामकुर्सी पर बैठे अख़बार पढ़ रहे थे । वैसे तो वह रिटायर हो चुके थे, मगर इतवार के दिन वह अब भी छुट्टी की-सी कैफ़ियत महसूस करते थे । उन्होंने अपने साफ़-सुथरे पाजामे के पांयचे ज़रा ऊपर को खिसकाये, सफ़ेद कलफ दिये हुए चिकन के कुर्ते की आस्तीन कुहनियों के ऊपर खिसकायीं, सिर बीवी की तरफ़ घुमाया और ऐनक में से उनको ग़ौर से देखते हुए बोले—"ऐं ?"

बीवी खिसिया गयीं । "तुम कुछ सुनते भी हो ? अख़बार का एक-एक लफ्ज़ पढ़ना ज़रूरी है । चार-चार अख़बार मँगवाओ, तो वह इतवार को आठ हो जायें । उँह !"

"अरे, तो कुछ कहोगी भी ?"

"मैंने कहा, श्रीवास्तव साहब के यहाँ रिश्ता भेजने के बारे में क्या ख़्याल है ? अब कुछ तै करोगे न ?"

"भई, बात यह है, कि मुझे तो सिरे से यह आइडिया ही पसन्द नहीं है, कि लड़की की तरफ़ से रिश्ता भेजा जाये । आखिर गर्ज़ उनकी है कि हमारी ? घर उनका बसेगा कि हमारा ? मुझे तो मुसलमानों का

यह दस्तूर बहुत अच्छा लगता है, कि लड़के वाले रिश्ता माँगने आते हैं। हमारे यहाँ इस रीति की बदौलत तो लड़के वाले इतने शेर हो जाते हैं, कि यह लाओ, वह लाओ, इतना रुपया मँगवाओ, मोटर दो, रेफ्रीजरेटर दो। योरुप में भी यही दस्तूर है, कि लड़का प्रोपोज़ करता है ?"

बीवी ने कमर पर दोनों हाथ रखे, "तो अब यह तो योरुप नहीं, हिन्दुस्तान है। और यहाँ तो वही रीति-रस्म होगी, जो होती आई है। देने-लेने को हमारे पास क्या कमी है ? उसके बाप का तो सब उसका है ही, हमारा भी सब उसका ही है।"

"मगर, भली आदमी, नीता से भी तो पूछना चाहिये।"

"हाँ, तो इसको मैं कब मना करती हूँ ? मैं खुद ही पूछ लूँगी। मगर यह न हो कि मैं उसे राज़ी करूँ, और आप बीच में टुकड़ा जोड़ दें, कि लड़का निरा अफ़सर है, फाइलों के अलावा किसी चीज़ से दिलचस्पी ही नहीं, बड़ा डल है, कला-वला यह क्या होता है, उसकी कमी है, कि फिर लड़की बिदक जाये।"

सिन्हा साहब हँसने लगे। फिर ज़रा रुक कर बोले "भई, वह लड़का तो है ही डल।...अब मैं डल को दिलचस्प तो कहने से रहा। अभी पिछले हफ्ते की बात है, मुझे काफी हाउस में मिला, तो मैंने कहा, 'चलो, सब कोई बारादरी चल रहे हैं। फ़िराक साहब आये हुए हैं। मुशायरा है,' तो कहने लगा, 'शेर तो मेरी समझ में नहीं आते।' कहिये, फिर क्या समझ में आता है ...कायस्थों की औलाद, लखनऊ का रहने वाला, शेर नहीं समझता। मेरी नीता आर्टिस्ट है। भला कैसे निभेगी ? घुट कर मर जायेगी मेरी बच्ची।"

"तो ब्याह दो उसे किसी लम्बे बालों वाले, फटेहाल शायर से कि मर जाये भूखी ! तुम तो ऐसे ही लोगों को पसन्द करते हो, जैसा वह एक आ गया था उस दिन।...तमाम मेरी कालीन पर राख गिरा गया।"

"भई तुम्हारा तो वही अफसरी दिमाग़ है क़ायदे से उठो, क़ायदे

से बैठो, क़ायदे से चलो, और शायद बीवी के पास भी क़ायदे से जाओ।" सिन्हा साहब ने बीवी की तरफ़ देख कर आँख मारी।

"भगवान बचाये। तुमको ज़रा भी शर्म नहीं। लड़की पिछले बरामदे में बैठी सब सुन रही होगी।...मैं तो ऐसे सोचती हूँ, कि अच्छे घर जाती, सुख से रहती। माँ-बाप की ममता उसके भाग्य में नहीं थी, तो घर वाले का तो सुख मिलता। मैंने नीता को कैसे कलेजे से लगा के पाला है! वह कौन समझेगा? कहीं ऐसी-वैसी जगह ब्याह दिया, तो सब यह कहने को हो जायेंगे, कि चचा-चची ने बेमाँ-बाप की बच्ची को उठा के नरक में झोंक दिया।"

"तुम इसकी फ़िक्र न करो। आजकल के लड़के-लड़कियाँ नरक में झुकने वाले नहीं है। काफ़ी होशियार हैं। कोई हम तुम नहीं, कि माँ-बाप ने गाय-बैल की तरह बाँध दिया, सो बँध गये।"

"ओहो, तुमसे कौन बहस करे? बाईस बरस की हो गई लड़की। क्या बुढ़ापे में शादी होगी? अभी उस दिन मनोरमा के तिलक में तिवारी जी की बीवी मिली थी, तो बार-बार जोड़ के हिसाब करने लगीं, कि बाप के मरने के वक़्त नीता चार बरस की थी, तो अब कितनी हुई?"

"तिवारी जी की बीवी की भली कही। हर बेटे की शादी पर मोटर माँगी, और मिली नहीं बाइसिकल भी।....अच्छा हुआ। लालची औरत! आखिर उसे हमारी बच्ची की उम्र से क्या मतलब है? मेरी नीता पढ़ी-लिखी है, खूबसूरत है, समझदार है। तुम ज़रा उसे घर से बाहर निकल के काम तो करने दो। फिर देखना, कितने लड़के उस पर आशिक होते हैं।"

"हे राम! यह क्या कहते हो? तो क्या नचाओगे लड़की को?"

सिन्हा साहब ने अखबार रख दिया, और खड़े होते हुए बोले—"नाचने में भी कोई हर्ज नहीं। तुम जिस सभ्यता का नाम जपती हो, उसमें लड़कियाँ खूब नाचती और इश्क करती थीं। और तुम जिन

देवताओं की पूजा करती हो, वह भी नाचते और इश्क़ करते थे, और बहुत अच्छा करते थे।"

फिर वह मुस्कराते हुए, अपनी लाइब्रेरी की तरफ़ चले गये।

सिन्हा साहब लखनऊ में तारीख़ और खासकर क़दीम तारीख़ और फनकारी के बहुत बड़े आलिम माने जाते थे, उर्दू-फ़ार्सी में शेर कहते थे, लखनऊ यूनिवर्सिटी में मुद्दतों उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ाया था। शेक्सपियर और मिल्टन पर बरसों लेक्चर देने के बाद अब रिटायर हो चुके थे। वज़ीर हसन रोड पर उन्होंने अपना छोटा-सा दो-मंज़िला मकान ठीक-ठाक कर लिया था, जो उनको विरासत में मिला था। खुद उन्होंने ज़िंदगी भर में सिर्फ़ लाइब्रेरी इकट्ठी की थी, जिसमें कला और संस्कृति पर बेशुमार किताबें थीं।

उनके अपनी कोई औलाद नहीं थी। बीवी एक बड़े सरकारी अफ़सर की बेटी थी, और उन्होंने अपने देवर की बेटी नीता को बड़े चाव से पाला था। उससे बहुत प्यार करती थीं, और अब हर वक़्त उसकी शादी की फ़िक्र में घुलती रहती थीं। वैसे तो वह बड़ी नेक, शरीफ मिजाज़ और मुन्तज़िम बीवी थीं। उनका यही इंतज़ाम था, फिर यह घर बना, और रिटायर होने के बाद भी अच्छी गुज़र-बसर हो रही थी। मगर जिस माहौल से वह आई थीं, उसमें इल्म, फ़न, ख़्यालात—यह सब कोई झमेला नहीं था। अच्छा खाओ, अच्छा पहनो, मोटर में बैठो, पार्टियों में जाओ, माँ-बाप के कहे से किसी पैसे कमाने वाले से शादी कर लो, फिर अपने लड़के-लड़की को अच्छे खानदानों में ब्याह दो, फिर मकान बनाओ, दिन में उसकी सफ़ाई-सुथराई करते रहो, शाम को सड़क पर टहलो, रात को खाना खा के दस बजे सो जाओ।

सिन्हा साहब के यहाँ उल्टा मामला था। उनके मरने वाले भाई, नीता के बाप, और वह खुद दोनों विद्यार्थी-जीवन के ज़माने में यूनिवर्सिटी के लड़कों के लीडर थे। लिहाज़ा उनके घर में हर वक़्त हंगामे होते रहते थे, रात के एक-एक बजे तक मीटिंग हो रही है, घर के कोने

खुदरों में अजीब-अजीब तरह के लोग सो रहे हैं, सुबह से अख़बार पर बहस हो रही है, साहित्यकारों और शायरों का जमघट है, कान्फ्रेंसें हो रही हैं, मीटिंगें हो रही हैं। कई बार पुलिस भी झाँक चुकी थी।

नीता के बाप की आवाज़ बड़ी शानदार थी। छोटी-सी उम्र से उसे संगीत का शौक था। रायबरेली जिला के नौजवान ठाकुर जय-बहादुर और आसिफ़उद्दौला के खानदान के नौजवान नवाब रज़ा हैदर साहब उर्फ़ पुत्तन साहब उनके खास दोस्तों में थे। मनोहर सिन्हा को संगीत का शौक था, जयबहादुर को शिकार का, और पुत्तन साहब को तैराकी का। मगर तीनों एक जान, तीन जिस्म थे। सारे लखनऊ में उनकी तिकड़ी मशहूर थी। कभी जंगलों और दरियाओं की सैर हो रही है, बन्दूक की आवाज़ तड़ातड़ आसमान की फिज़ाओं को चीर रही है, कभी गोमती का पानी है, और पुत्तन साहब का गोरा-गोरा पिन्डा। क्या-क्या कमाल दिखाते हैं ! कभी संगीत की तानें उड़ रही हैं। सब झूम रहे हैं, सब मदहोश हैं। मनोहर को बीवी भी मिली, तो ऐसी ही। और दोनों मियाँ-बीवी मरे भी तो संगीत के ही इश्क में। कलकत्ते में कोई म्युज़िक कान्फ्रेन्स थी। दोनों जा रहे थे, कि रेल का हादसा हुआ और एक-साथ खत्म हो गये। खैरियत हुई कि नीता को चाची ने रोक लिया था। वह उस वक़्त तीन बरस की थी।

सिन्हा साहब ने भाई का ऐसा मातम किया, कि तक़रीबन पागल हो गये। फिर जब वक़्त ने ज़रा ग़म ग़लत किया, तो भाई की तरफ़ मायल हो गये, चित्रकला, मूर्तिकला, और संगीत की किताबें इकट्ठी करने लगे, सारे कॉलेज और म्यूज़िक कॉलेज के लाइफ-मेम्बर बने, नुमाइशें करवाते, नौजवान फनकारों पर लेख लिखते, उनका दिल बढ़ाते, उनकी चीज़ें बिकवाते। रिटायर होने के बाद भी हर वक़्त उनके यहाँ नौजवान कलाकारों और इल्म के शौकीन लड़के-लड़कियों का जमघट लगा रहता था।

आज इतवार होने की वजह से नीता अपने कमरे की सफ़ाई कर

रही थी, जो कि कभी-कभार ही करती थी। आर्ट कॉलेज जाते वक़्त वह हमेशा अपने कमरे को ताला लगा जाती थी, क्योंकि उसे मालूम था, कि चाची उसके कमरे की ज़्यादातर चीज़ों को कूड़ा समझती है, कहीं उठा के फेंक न दें, कि 'बेटी यह क्या सब तुमने अला-बला भर रखी है ?' उसे एकदम हँसी आने लगी। चाची भी खूब थीं। कितनी अच्छी, कितनी मुहब्बत वाली। मगर भई, उनका दिमाग़ तो था, कि बिल्कुल गोदरेज का बन्द ताला, कि अपनी जगह से टस-से-मस नहीं होता था।

सिंगार-मेज़ की बड़ी दराज़ खोलते हुए उसको आइने में अपनी सूरत नज़र आई। वह अभी तक नहाई नहीं थी। सोचा था कि कमरा साफ़ कर ले, तो नहाये। मगर आइने में उसे अपनी शक्ल अच्छी लगी। गन्दुमी रंग, जिसमें गुलाबियाँ झलक रही थीं। स्याह आँखें, जिनमें कल का काजल फैला हुआ था। बहुत घने स्याह बाल, जो किसी तरह क़ाबू में नहीं आते थे। पतली-सी नाक, ज़रा मोटे, ज़रा फैले हुए होंठ। उसने आईने में अपने को ज़बान दिखाई। फिर हँस पड़ी। चमकते दाँत दिखाई दिये। सामने के दोनों दाँतों के बीच में बारीक-सी खिड़की थी। फिर नन्हीं-सी नोकदार ठुड्डी। अपनी ठुड्डी को देख कर नीता का दिल एकदम भर आया, क्योंकि उसे ख़्वाब की तरह याद था, कि एक छोटे क़द का दुबला-पतला आदमी था, जो हर वक़्त गुनगुनाता और सदा क़हक़हे लगाता रहता था। हमेशा उसकी ठुड्डी पकड़ कर गुनगुनाने लगता था—'चलत पुरवाई झूम, सन, ना, ना, न, न, न — झिंगुरवा बोले झूम, झन, ना, ना, ना, न, न, न।' एक लड़की थी उसके बराबर, जो अक्सर तानपूरा लिए बैठी रहती थी। ढेरों लोग होते। चचा बीच में बैठते, और बातें करते ही जाते। और कभी सब मिल कर उनकी बात पर ताली बजाते। ''हैपियर, हैपियर' की आवाज़ें गूंजती। और फिर तानपूरा बजने लगता, और वह आदमी बराबर से बैठ जाता, और दोनों मिल कर गाते—'कैसे खेलन जइहों सावन माँ कजरिया,

बदरिया घिर आई गोरिया....' और चची त्यौंरियों पर बल डाले सबको फालसे का शर्बत बाँटती, गर्म-गर्म फुलकियाँ निकाली जातीं। जाड़ों में यही महफ़िल कमरे के अन्दर जमती। काफी बनती, मूंगफलियाँ तली जातीं।

कभी-कभी नीता भी वहाँ पहुँच जाती। चाची कहतीं—"यह क्या क़ायदा है, कि बच्चे दस बजे रात तक जागते रहें? नन्हों-मुन्नों को साढ़े-सात बजे सो जाना चाहिये।" मगर वह गाता हुआ आदमी उसे गोद में बिठा लेता और कहता—"मगर, भई बच्चों के कान में शुरू से संगीत की आवाज़ पड़नी चाहिये।" और फिर वह नीता से कहता—"हाँ बेटी, शुरू करो ज़रा—सा, रे, गा—"

नीता ने दीवार पर लगी हुई तस्वीर की तरफ़ देखा। उसमें वही आदमी और वही लड़की बैठे थे, और लड़की एक बन्डल-सा गोद में लिए हुए थी, जिसके अन्दर से एक मुन्ना-सा घने बालों वाला सिर और मिची-मिची दो आँखें दिखाई दे रही थीं। नीचे कुछ साज़ रखे थे। तस्वीर के नीचे हिन्दी में लिखा था, 'सारी मात्रा'। और ऊपर उर्दू में लिखा था,

'बागे बहिश्त से मुझे हुक्मे सफर दिया था क्यों।
कारे पिन्हा दराज़ है, अब मेरा इन्तज़ार कर।'

नीता को ख्वाब-सा याद था कि जिस दिन उसके बाप के मरने की खबर आई थी, उस दिन कितने लोग आये थे, तमाम लॉन, पूरा हाल और सारे कमरे खचाखच भर गये थे। नवाब चचा पछाड़ें खा रहे थे, ठाकुर चचा दीवारों से सिर मार रहे थे। मगर उसके अपने चचा उसे गोद में दबाये, ज़मीन पर बैठे थे। उसके बाप के बेशुमार दोस्त इधर-उधर घूम रहे थे। फिर जमीन पर सफ़ेद फ़र्श बिछाया गया था। और वह सफ़ेद फ़र्श देखते ही दौड़ कर चचा की गोद से निकलकर उस पर कलाबाज़ियाँ खाती दूर तक चली गई थी, और यह सोचती जाती थी कि अब उसका बाप आ जायेगा, और उसकी ठुड्डी पकड़ कर गुनगुना

कर झूम-झूम के कहेगा, 'चलत पुरुवाई ' यह तो उसे बहुत बाद में मालूम हुआ था, कि वह ऐसी जगह चला गया था, जहाँ से कोई वापस नहीं आता।

चूँ-ऊँ-ऊँ करता उसका दरवाज़ा खुला। रामी अन्दर आई, और एक पान नीता की तरफ़ बढ़ाती हुई बोली—"लीजिये, बीबी।" फिर उसने इधर-ऊधर देखा। पलँग पर साड़ियों का ढेर और मेज़ पर किताबों का अम्बार देख कर बोली, "बीबी, आप क्या सफ़ाई कर रही हैं? ...हमको क्यों नहीं बुलवा लिया ...यह साड़ियाँ क्या इस्तरी होंगी। लाइये हम कर दें। अब तो आपने हमें इस्तरी करना सिखा दिया है।"

नीता पलँग पर बैठ गई, पान मेज़ पर रख दिया, और कहने लगी—"अभी हम नहाये नहीं हैं। नहाकर तो पान खायेंगे ...हाँ, ये इस्तरी होंगे, पर कोई जल्दी नहीं। कर देना।....और यह देख, भई...." उसने साड़ियों के ढेर में से एक बारीक सफ़ेद सूती साड़ी निकाली, जिस पर चिकन का बड़ा नाज़ुक वार्डर बना हुआ था। "हाय, बिटिया, यह कैसे फट गई?....यह तो कामनी बेगम मंगल ही को लाई थीं। फिर आपने लांडरी में धुलवाई थी।....कल ही तो आप पहन के गई थीं। ... ऐं बिटिया?"

नीता रुआँसी होकर बोली—"हाँ, भई, क्या करें? रिक्शे से तो हमारी साड़ियों का इतना नाश होता है कि क्या कहें।"

रामी ज़रा अर्थपूर्ण अन्दाज़ में मुस्कराई। "कोई बात नहीं। अब थोड़े दिन में तो, भगवान करे अपनी मोटर में बैठिएगा।....लाइये, लाइये, हम ऐसा रफ़ू कर देंगे, कि पता भी नहीं चलेगा।"

नीता ज़रा बिगड़ कर बोली—"कैसी मोटर?"

रामी ने उसके बिगड़ने का कोई नोटिस नहीं लिया। साड़ी तह करते हुए बोली—"हमको सब पता है। बीबी जी साहब से बात कर रही थीं।....बस अब नौबत बजने ही वाली है। मगर नौबत के साथ रिकार्डिंग ज़रूर होनी चाहिये। सुबह नौबत बजे, शाम को रिकार्डिंग।

अच्छे-अच्छे फ़िल्मी गाने।"

नीता एकदम से उठकर रामी के सामने खड़ी हो गई और बड़ी गम्भीरता से बोली "रामी, तुझे क्या पता है?"

रामी कुछ डर-सी गई। साड़ी हाथ में लिये-लिये, जैसे समझाने के अन्दाज़ में बोली—"बिटिया हमको यह पता चला है, कि श्रीवास्तव साहब की कोठी अब आबाद होने वाली है। हमने उनको देखा भी है। बड़े स्मार्ट हैं। नई सफ़ेद मोटर भी है उनके पास। एक ही तो बेटे हैं। मगर उस मोटर के दोनों किवाड़ नहीं खुलते, बिटिया, एक ही खुलता है।....मगर, बिटिया, पता नहीं वह काली ऐनक क्यों लगाये रहते हैं। हमारे साहब को चाहिये, कि अच्छी तरह देख-भाल लें। कहीं आँख में कोई खराबी न हो।"

नीता पहले तो ज़ोर से हँसने लगी, फिर एकदम बिगड़ कर बोली "कोई ज़रूरत नहीं है देखने-भालने की।"

फिर दरवाजा चूँ ऊँ-ऊँ करके खुला। मिसिज़ सिन्हा अन्दर झाँकी। "अरे, तुम अभी तक नहाई नहीं नीता? अरे रामी, तेरा आदमी घर पर है?"

"नहीं, बीबीजी। वह तो सवेरे ही अन्वरसीटी चला गया।"

"ऐसा कहती है चला गया, जैसे इसके बाप का नौकर है। अरे आज क्यों चला गया इतवार के दिन? सब प्रोफ़ेसरों की खैरख्वाही बस रामभरोसे ही को रह गई है?"

"बीबीजी, बड़े साहब ने कहा है, कि 'इतवार को आकर हमारे बाग का काम किया करो, नहीं तो मँहगाई रोक लेंगे।' इतवार के दिन उनके फ़ारम पर भी जाना है मुर्गियों को दवा देने।"

"वाह यह तो बड़ी जबरदस्ती है। साहब इतने दिन प्रोफ़ेसर रहे। हमने तो कभी किसी चपरासी से अपने घर का काम नहीं लिया।.... मैंने सोचा था, आज ज़रा ऊपर की बिजली देख लेता। कहीं फ्यूज तो नहीं उड़ गया। रात से जल नहीं रही है। अच्छा, जब आये, तो कहना

कि ज़रा आकर बिजली देख ले। तुम आकर नाश्ता करो, भई नीता।
....अभी नहीं नहाई हो, तो नाश्ते के बाद नहा लेना। सब ठंडा हो जाएगा।"

"आ रही हूँ, चाची। बस, पाँच मिनट।"

नीता ने कपड़े उठाये, और गुसलखाने में घुस गई। रामी ने नीता की साड़ियाँ उठाईं, तख्त पर रखीं, इस्तरी का प्लग लगाया, और साड़ियों पर इस्तरी शुरू करते हुए सुहाग के गीत गुनगुनाने लगी।

अन्दर गुसलखाने में नीता ज़ोरों से नहा रही थी। जैसे खिसियाहट में लोटे-पर-लोटा डाल रही हो।

सिन्हा साहब बाहर के बरामदे में निकल कर, दरों पर चढ़ी हुई गुलाब की बेल का मुआयना कर ही रहे थे, कि फाटक में नवाब पुत्तन साहब की मोटर दाखिल हुई—धड़ाधड़, धमाधम, झनाझन करती, शोर मचाती, खड़बड़ाती। वह लड़खड़ा-लड़खड़ा कर चलती हुई, सीढ़ियों के पास एक झटके से रुक गई। नवाब पुत्तन साहब उतरे। सफ़ेद कलफ़ किया चिकन का कुर्ता, सफ़ेद अरज़ का पायजामा, पाँव में सलीमशाही। झुककर उन्होंने गियर के पास वाले खाने में से डिबिया और बटुआ उठाया। सीढ़ियों की तरफ बढ़े। "आदाब बजा लाता हूँ।"

सिन्हा साहब बरामदे में खड़े, बड़े लुत्फ से नवाब साहब की मोटर को बल रहे थे। "आदाब-अर्ज है। अमाँ, इस बेचारी को पेंशन क्यों नहीं दे देते आप ?"

नवाब साहब ने एक क़हक़हा लगाया। आँखों के कोनों में पड़ा हुआ झुर्रियों का बल और गहरा हो गया। पान से भरे हुए मुँह से पीक गिरते-गिरते बची। "क्या फरमाते हैं, भाई साहब, आप ? लखनऊ में नाल गड़ी है हमारी। पुराने मज़लूमों को छोड़ना हमारी वज़ादारी के खिलाफ़ है।" वह सीढ़ियाँ चढ़कर बरामदे में आ गये, और एक आरामकुर्सी पर बैठते हुए बोले—"कहिये, सब ख़ैरियत है खुदा के फ़ज़ल से ?"

सिन्हा साहब पहले ही आरामकुर्सी पर बैठ चुके थे। "जी हाँ, शुक्र है खुदा का। लेकिन यह आज आप किधर भूल पड़े।"

नवाब साहब एकदम चुप हो गये। क्या ज़माने का फेर था। एक वह भी वक़्त था, जब वह रोज़ शाम को यहाँ आया करते थे, और रात गये तक ठहरते थे। जयबहादुर कभी उनके साथ आता था, कभी यहीं मिल जाता था। कभी ये दोनों हज़रतगंज से मनोहर को फोन करते। फिर सब कहीं मिलते, और कोई न कोई प्रोग्राम बनता। ऐसा हुआ कि न मनोहर रहा, न जयबहादुर। सिर्फ़ पुत्तन साहब उन दोस्तों का मातम करने को रह गये। खैर, मनोहर की बेटी जीती रहे ! और जयबहादुर का लड़का सलामत रहे। कैसा होनहार निकला था नरेन्द्र ! एम० एस-सी० करके अब ड्रग-रिसर्च में काम करता था, और बिल्कुल बाप की तस्वीर था। वही तेज़ गोरा रंग, तीखा नक्शा, मुहब्बत-भरी आँखें, होठों पर वैसी ही मुस्कराहट। क़द तो बाप से भी ऊँचा निकला था, अलबत्ता जिस्म वैसा तगड़ा नहीं था। होता भी कहाँ से ? वह दूध, मक्खन, बादाम, बालाई अब कहाँ ?

पुत्तन साहब को चुप देखकर, सिन्हा साहब भी भाई की याद में खो गये। ऐसा लगता था, कि दोनों के बीच में कोई तीसरा बैठा है - वह तीसरा, जो वहाँ नहीं था। फिर सिन्हा साहब ने एकदम सुकूत तोड़ा—"पुत्तन मियाँ, वह नीता के लिये श्रीवास्तव साहब के लड़के के लिये ज़ोर दे रही हैं आपकी भाभी।"

नवाब साहब चौंक पड़े, "कौन ? राजकुमार ?"

"हाँ।"

"यह आप क्या फ़रमा रहे हैं ? राजकुमार जनसंघी है।"

"ऐं···नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ! श्रीवास्तव साहब का लड़का जनसंघी ? नामुमकिन।"

"मैं सच अर्ज़ कर रहा हूँ, भाई साहब।"

"मगर—मगर वह तो सरकारी मुलाज़िम है।"

"तो आपके ख़्याल में क्या हमारी सरकार जनसंघियों की सरपरस्ती नहीं कर रही है ?....आप क्यों भूल गये, कि पिछले एलेक्शन में ढेरों कांग्रेसी जनसंघियों के लिये काम कर रहे थे। तमाम वोटरों से कह रहे थे, कि कांग्रेस को वोट मत दो।"

"वैसे वह लड़का मुझे नीता के लिये पसन्द तो खुद ही नहीं है। मगर इस बात का मुझे यक़ीन नहीं आता।"

"वह तो आपको यक़ीन नहीं आयेगा, क्योंकि कोई ईमानदार आदमी यक़ीन ही नहीं कर सकता, कि उसके घर में कोई बेईमान भी पैदा हो सकता है। मैंने भी जब सुना था, तो मैं सकते में रह गया था। फिर पिछले साल यूनिवर्सिटी-एलेक्शन हुए, तो मैंने अपने कान से राज-कुमार को तक़रीर में कहते सुना, कि 'नवाब पुत्तन साहब को यूनिवर्सिटी कोर्ट में होने का क्या हक़ है। इनके दोनों बेटे पाकिस्तान चले गये हैं। ये ग़द्दार हैं। ये पाकिस्तानी एजेन्ट हैं। इनके घर कम्यूनिस्टों की मीटिंग होती है। ये चीन के लिये जासूसी करते हैं।....सुना आपने ? मैं ग़द्दार हूँ—मैं जिसका दादा गदर में फाँसी चढ़ा, जिसके बाप ने लखनऊ यूनिवर्सिटी को बनाया, जो लखनऊ छोड़ने को तैयार नहीं हुआ।"

सिन्हा साहब आँखें फाड़े पुत्तन साहब का मुँह तक रहे थे।

"और यह सब-कुछ हो रहा है, और हुकूमत कानों में तेल डाले बैठी है। अगले एलेक्शन में देखियेगा, क्या होता है। किसी को अन्दाज़ा नहीं है, कि यह ज़हरीला पानी किस तरह हमारी ज़िन्दगी की दीवारों में भर रहा है। और एक दिन इमारत ढह पड़ेगी। कांग्रेस के अब कुछ उसूल नहीं रह गये हैं, भाई साहब। हम लोगों को सिर्फ़ कुर्सी चाहिये। कुर्सी के लिये यह यज़ीद से भी समझौता कर लेंगे। अब उन्हें सिर्फ़ अपनी थैली चाहिये। उसमें जो रुपया हो, वह गरीबों के खून से ही क्यों न तर हो।"

फिर वह एकदम बोले—"माफ़ कीजियेगा, मैं न जाने क्या-क्या कह गया। कहाँ-से-कहाँ बात निकल गई। कलेजा इतना पीप हो गया है,

भाई साहब, कि मौक़ा-बे-मौक़ा फूट पड़ता है।" फिर उन्होंने एक आह भरी, और पहलू बदल कर बोले—"नीता कैसी है?"

"अच्छी है," सिन्हा साहब ने आहिस्ता से कहा। फिर गर्दन मोड़ कर आवाज़ दी—"नीते, यहाँ आओ, बेटे। नवाब चचा आये हैं।"

नीता जाली का किवाड़ खोल कर निकली। चम्पई रंग की, चौड़े स्याह किनारे वाली साड़ी, चम्पई रंग का ब्लाउज़ पहने, नहाई-धोई वह एक चमेली की कली लग रही थी। पुत्तन साहब को देखते ही उसने आगे बढ़ कर उनके गले में बाँहें डाल दीं। "नवाब चचा, हुँक-हुँक—आप हमारी सालगिरह पर बम्बई चले गये। आप बड़े वह हैं।"

नवाब पुत्तन हँस कर बोले—"बेटे मैं बहुत ज़रूरी काम से गया था। मगर—हुँक-हुँक तूने अपने चचा के बग़ैर सालगिरह कैसे कर ली?"

फिर अपने हाथ में थामा हुआ लिफ़ाफ़ा उसकी तरफ़ बढ़ाते हुए बोले "ले, तेरे लिए एक साड़ी—"

"हाय, रे!" नीता ने लिफ़ाफ़ा खोला। एक सब्ज रंग की सुर्ख बार्डर वाली हसीन और नाज़ुक साड़ी फैल गई।

"अच्छा, अब यह बता, आज-कल क्या बना रही है? और नुमाइश कब है?....और हाँ, मोटर में से शाही टुकड़े उतरवा ले। तेरी चची ने रात बनाये थे। तेरे बग़ैर मुझसे खाये नहीं गये।....तो हाँ, नुमाइश कब है?"

"अब जल्दी ही होगी। हमने अखबार में पढ़ा था, कि आप भी जज होंगे। ऐं!"

"लीजिये, भाई साहब, सुना आप ने? इन्हें बता दूं।....नहीं ....नहीं बताते, जा। क्यों बताएँ।"

"बता दीजिये प्लीज़।"

"अच्छा, अब मुझे एक गिलास पानी पिला। भाभी से आदाब कहना। फिर मैं चला। भाई साहब, इज़ाज़त दीजियेगा।....डॉक्टर सक्सेना के यहाँ एक मीटिंग है। भाई साहब, यह इस साल बारिश

को क्या हो गया है ? जनम अष्टमी पर दो-चार बूंदें गिरने के बाद बिल्कुल ही सन्नाटा हो गया। इस साल न आम खाने में कुछ मज़ा आया, न अँदरसे अच्छे लगते हैं।....इस गर्मी ने तो मार दिया।"

सिन्हा साहब बोले—"रात से तो कुछ अब्र है। ऐसा लगता है कि बारिश होगी।"

५

निहाल सिंह की माँ ने छज्जे पर से झाँक कर देखा।

नीचे बाजार में बड़ी रौनक थी। तरह-तरह के सौदे वाले आवाज़ें लगाते घूम रहे थे। लोग टुकड़ियों में खड़े गप-शप कर रहे थे, या हुकूमत में होने वाली गड़बड़ी की आलोचना हो रही थी। मंदिर के घन्टे बज रहे थे। लोग अन्दर जा रहे थे, आ रहे थे। मन्दिर के सामने और फलों की दुकानों के आगे लोग लकड़ी का खानाय साज-सामान—आईने वाली दराजें खूंटियाँ वगैरा, दफ्ती के सूटकेस और अटैची-केस, रबर की चप्पलें, सस्ते फाउन्टेन-पेन वगैरा बेच रहे थे। सड़क पर आमदोरफ्त एक तरफ़ से थी। मगर फिर भी कभी-कभी कोई मोटर किसी के कान में ज़ोर से हॉर्न बजाती, और वह उछल कर एक तरफ़ को हो जाता या किसी रिक्शे से टकरा जाता। कभी कोई रिक्शा किसी दूसरे रिक्शे के पीछे खट से पैर अड़ाता, और आगे वाला उसको एक गाली देकर अपने आगे वाले से खट से अड़ाता। बच्चों की उँगलियाँ पकड़े हुए बुर्के रिफ्यूजी मार्केट में दाखिल होते। जवान-जवान खूबसूरत पंजाबी लड़कियाँ चाट की दुकानों के आगे खड़ी हुई दफ्तरों से वापस होने वाले क्लर्क

बगलों में फाइलें दबाये, तेज़-तेज़ चलते चौराहे की तरफ़ आते, और गलियों में मुड़ जाते। सामने असगर अली मोहम्मद अली और अहमद हुसैन दिलदार हुसैन की दुकानों में भीड़ कम थी, मगर उनके पास सेकेंड-हैन्ड किताबों की दुकान में शाम से अभी तक भीड़ बहुत थी।

घड़धड़ाती हुई बस कई बार आई, रंग-बिरंगे रसीले फलों की दुकानों की लम्बी क़तार के सामने उसने कई बार ढेरों इंसानों को उगला, और फिर आगे बढ़ गयी।

निहालसिंह की माँ गिनती करती रही—यह दसवीं बार बस आई है। मगर उनका निहाल इसमें से भी नहीं उतरा। अब तो नौ बजते होंगे। रफ्ता-रफ्ता दुकानें भी सब बन्द हो गईं। बाजार की रौनक पर उदासी छाती जा रही है। इक्का-दुक्का चने-परमल वाले अपनी छाबड़ी पर धुआँ देता चिराग़ जमाये बैठे हैं, मगर उनकी हंडियों की भी आग ठण्डी हो चुकी है। अलबत्ता खाने के होटलों पर अब भी रौनक़ है। लोग बैंचों पर बैठे, छोटे-छोटे प्यालों में एक-एक बोटी और ज़रा-ज़रा-सा शोरबा रोटी से खा रहे हैं। चूल्हे के उपलों पर चमकती हुई एलमोनियम के बड़े-बड़े देगचों में से भाप उठ रही है—बड़ी-बड़ी, मुलायम, गुदगुदी आबी रोटियाँ। तन्दूरी पराठे पास ही लगे तन्दूर में से निकल-निकल कर मेज़ों पर आ रहे हैं। खुली आग पर कबाब लिपटी हुई सीखें फैक्ट्री के बाबिनों की तरह घूम रही हैं।

एक लम्बा-सा, दुबला-सा आदमी मैला मलमल का कुरता और उतना ही मैला पायजामा पहने, नंगे पाँव, हाथ में एक लकड़ी पर बेले का हार लटकाये आहिस्ता-आहिस्ता निहाल के घर के नीचे वाले होटल में आया, और कबाब बनाने वाले से धीमे से कुछ कहा। कबाब वाले ने आवाज़ दी—"अबे शहनशाह, एक प्लेट ला।"

एक छोटा-सा लड़का धारीदार कमीज़ और उटंगा पायजामा पहने, एक प्लेट लाया। कबाब वाले ने एक आबी रोटी प्लेट में रखी, एक

गोला कबाब उस रोटी पर रखा, और उस आदमी की तरफ़ बढ़ा दिया। आदमी वह प्लेट लिए एक मेज़ की तरफ़ गया जो बाहर लगी थी। हारों को बराबर करके उसने कुर्सी के हैन्ड पर टाँग दिया, और खुद कुर्सी पर बैठकर कबाब-रोटी खाने लगा।

अधखिली कलियों की महक फैली, और कोठे तक पहुँच गई। और निहालसिंह की माँ लाजवन्ती देवी छज्जे पर खड़ी, अपने बेटे का इन्तज़ार करती रहीं।

ऐसे ही होते थे वे बेले के हार। ऐसी ही महकती, फैलती थी उनकी खुशबू, जो निहाल के बाबा उनके लिये लाया करते थे। क्या अजीब आदमी था वह शख्स भी !

वैसे तो वह १९३० से कांग्रेस में शरीक हो गये थे। खद्दर पहनते थे, किसानों में तक़रीरें करते थे। जब गांधी जी ने डांडी मार्च किया था, तो वह बलिया से उनके साथ मार्च करने गये थे, और क़ैद हुए थे।

फिर दस-बारह साल तक किसानों में काम करने के बाद १९४२ में जब 'हिन्दोस्तान छोड़ दो' का नारा दिया गया, तब तो उन्होंने अपनी थोड़ी-बहुत ज़मीन, बीवी-बच्चे सब तज दिया, किसानों के एक जुलूस का नेतृत्व किया, कुछ दिन छिपे रहे, फिर गिरफ्तार हुए। जेल में बड़ी सख्तियाँ उठाईं। तक़रीबन सबके बाद छोड़े गए। जेल से बाहर निकले, तो पक्के सोशलिस्ट हो चुके थे। मगर स्वास्थ्य बिल्कुल जवाब दे चुका था।

उनकी गैरहाज़िरी में पुलिस ने उनका कुछ कच्चा, कुछ पक्का घर तोड़ दिया, उनकी ज़मीन पर कब्ज़ा कर लिया। दो गायें थीं। दोनों को बेचकर लाजवन्ती देवी अपने एक रिश्ते के भाई के यहाँ लखनऊ आ गई। उनकी अमीनाबाद में एक छोटी-सी दुकान थी, और यह घर था। बीवी मर चुकी थी, बाल-बच्चा कोई नहीं था। उन्होंने बहन के ही बच्चे को अपनी औलाद समझा। मरते वक़्त मकान उसके नाम लिख

कर, बहन को मकान और दुकान दोनों का मालिक बना गये।

उस वक़्त निहाल कोई तीन-चार साल का था। निहाल के पिता जब छूट कर आये, तो लखनऊ में ही रहने लगे। उन्होंने एक महिला-सुधार कमेटी बनाई, और पेपर मिल के कार्यालय में काम करने लगे। रात को ग्यारह-बारह बजे घर पर आते थे, और कभी-कभी लाजवन्ती के लिए बेले का एक हार लाते थे। उस ज़माने में बेले का हार एक आने में मिलता था। जब बहुत दिन गुज़र जाते, और बेले का हार न आता, तो लाजवन्ती समझ जातीं, कि कई दिन से उसके शौहर के पास एक आना भी फालतू नहीं बचा है। वह अपनी गृहस्थी में से बचाई हुई चवन्नी या अठन्नी चुपके से उनके खद्दर के कुर्ते की जेब में डाल देतीं।

फिर हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया। आज़ादी के लिए जिन लोगों ने क़ुर्बानियाँ दी थीं, उनकी फहरिस्तें बनने लगीं। उनके लिए खास रियायतों पर ग़ौर किया जाने लगा, और अखबारों में छपने लगा, कि ऐसे लोग हकूमत को इत्तला दें।

प्रेमसिंह ने भी अपनी खोई हुई जमीन के लिये दरख्वास्त दी, फिर दरख्वास्त दी और फिर दी। मगर कुछ न हुआ।

फिर एक दिन उनको किसी ने मंत्रिमंडल के गृह-विभाग के किसी बड़े अफसर का पता बताया, जिनका इन कामों से ताल्लुक़ था। वह पूछते, ढूँढ़ते उसके दफ्तर पहुँच गये। बड़ी मुश्किल से उनको उसका कमरा मिला, क्योंकि सेक्रेटेरियट की घुमावदार सीढ़ियों और गलियारों, कमरों और बरामदों की उन्हें कोई जानकारी नहीं थी। चपरासी को अपना नाम और काम एक पर्चे पर पेंसिल से लिखकर देने के बाद वह बरामदे की रेलिंग से लगकर खड़े ही हुए थे, कि उन्हें शीशे में से अन्दर उस अफसर की सूरत नज़र आई। वह अपनी जगह पर स्तब्ध खड़े रह गये। लेकिन एक-ही-दो मिनट बाद उन्हें होश आ गया। कमज़ोर होने के बावजूद, वह तेज़ी से चलते हुए ज़ीने की तरफ़ बढ़े ही थे, कि चपरासी पीछे से दौड़ा।

"अरे, आप कहाँ जात हो ? ....आप का साहब बुलावत हैं ।"

वह तीन-चार सीढ़ियों उतर चुके थे। रेलिंग पकड़ कर रुके, मुड़कर बोले—"साहब से कहना, कि मुझे उनसे कोई काम नहीं है। मैं ग़लती से यहाँ आ गया था। मैं रास्ता भूल गया था।"

अन्दर बैठे हुए अफसर की सूरत अभी भी उनकी आँखों में घूम रही थी। वह उसे अच्छी तरह पहचानते थे। वह उनके ज़िले का वही अफ़सर था, जिसने कई बार अंग्रेजों के लिए जासूसी की थी, कई बार हिन्दू-मुस्लिम फ़साद करवाये थे, कई देशभक्तों को जेल भिजवाया था, कांग्रेस के जुलूस पर गोलियाँ चलवाईं थीं, पिछले महा-युद्ध में कई ऐसे ठेके लिये थे, जिनसे नफ़ा कमा कर उसने लखनऊ में दो कोठियाँ बनवा ली थीं। अब वह खद्दर पहनता था, गाँधी टोपी लगाता था, वन महोत्सव में पेड़ लगाता, और स्कूलों की नींव रखता था, लोगों को गाँधी जी का फलसफा समझाता था।

उस दिन प्रेमसिंह काफी रात गये घर वापस लौटे, और उनके हाथ में एक बेले का हार था।

लाजवन्ती देवी उस रात को कदापि नहीं भूल सकतीं।

इसी एक कमरे के घर में कोने में चटाई बिछी थी। उस पर ग्यारह-बारह साल का निहाल पेट में घुटने सटाये, गुड़मुड़ पड़ा सो रहा था। अब वह छठी क्लास में पढ़ता था। उसकी किताबें सिरहाने तितर-बितर पड़ी थीं। फीते खुले हुए जूते उसके पांवों के पास रखे थे।

प्रेमसिंह ने अन्दर आकर, बेले का हार निहाल के सर के पास चटाई पर रख दिया, और दूसरी चटाई पर दीवार से पीठ सटा कर बैठ गये। लाजवन्ती देवी को मालूम था, कि उसका शौहर आज किस काम से गया था, मगर उन्होंने कुछ नहीं कहा, सिर्फ शौहर का मुंह देखा। और वह इस तरह मुस्कराये जैसे, बरसों से नहीं मुस्कराये थे। कहने लगे—"खाना दोगी, भई ?"

लाजवन्ती ने कहा—"हाँ, हाँ।" फिर वह रसोई से रोटी और

अरहर की दाल ले आईं, जिसमें बराय नाम घी पड़ा था।

प्रेमसिंह खाते हुए, बीवी को छेड़ने के अन्दाज़ में बोले—"तुमने वह सुना है न कि अरहर की दाल, गर्म घी और बाँके नैनों वाली बीवी हो, तो यही दुनिया जन्नत है।"

लाजवन्ती बोलीं—"अच्छा, अब रहने दो। खाना खाओ।"

उन्होंने एक-दो निवाले खाए, फिर बोले—"लाजो, हम लोगों के यहाँ दो गायें थीं न?"

लाजवन्ती ने एक आह भरी, एक मिनट चुप रहीं, फिर बोलीं—"अब इस वक़्त तुम्हें गायें क्यों याद आ रही हैं? जो चीज़ गई, सो गई।...मेरे निहाल को भगवान जीता रखे। अनमोल चीज तो हम लोगों के पास है ही।"

प्रेमसिंह ने एक घूंट पानी पिया। "लाजो, वैसे तो मैंने हमेशा वही किया, जो ठीक समझा। पर क्या करूँ! उसमें तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ।"

वह जल्दी से बोली—"पर मैंने तुमसे कभी कुछ कहा जो तुम आज यह उल्टी-उल्टी बातें कर रहे हो?....तुम तो ज़मीन के लिये कहने गये थे न? छोड़ो यह बात। बताओ, उसका क्या हुआ?"

"हो तो बहुत-कुछ सकता था, लाजो, मगर मैं अपनी देश-भक्ति को खोटे सिक्कों में भुनाने के लिये तैयार नहीं हूँ। मैं किसी ऐसे के आगे झुकने को तैयार नही हूँ, जिसे मैं नीच समझता हूँ।"

"पर हुआ क्या?"

"हुआ यह कि जिस अफ़सर से हमें जमीन मिलने की बात करनी है, वह प्रताप बहादुर है।"

लाजवन्ती को जैसे करन्ट मार गया। "हैं?....मगर—मगर—यह कैसे हुआ? वह तो कांग्रेस का दुश्मन था। उसने तो खड़े होकर हमारा घर खुदवाया था। यह कैसे हुआ?"

"लाजो, मेरा ख़्याल है, कि यह तो कुछ नहीं। अभी और बहुत-कुछ

होगा। अभी न जाने किन-किन रास्तों से गुज़र कर असल रास्ते पर आयेंगे, लाजो। मगर, जैसे मुझे यह विश्वास था, कि हिन्दुस्तान आज़ाद होगा, और वह होके रहा, इसी तरह मुझे विश्वास है, कि हमारे देश में सोशलिज़्म आयेगा, वह आके ही रहेगा। हमारी ज़िन्दगी में नहीं, तो हमारे बच्चों की ज़िन्दगी में आयेगा, पर आयेगा ज़रूर।" और उन्होंने हाथ बढ़ा कर निहाल के उलझे हुए बालों को सहलाया, अपने सोते हुए बेटे को ग़ौर से देखा, और मुस्कुराये। "अगर इसको भी मेरा-सा विश्वास मिला तो ज़रूर हमारे देश में सोशलिज़्म आयेगा। और जब आयेगा, लाजो, तो यह सारा कूड़ा-करकट छँट जायेगा। ये हालात जो हैं, ये रहेंगे नहीं। हिन्दुस्तान जन्नत हो जायेगा। कौन-सी ऐसी चीज़ है, जो हिन्दुस्तान की धरती नहीं पैदा कर सकती ? कौन-सा ऐसा काम है, जो हिन्दुस्तान की जनता नहीं कर सकती ?...."

फिर उन्होंने बेटे के सिरहाने से बेले का हार उठाया, और बीवी के जूड़े पर लपेटने लगे थे। वह जूड़ा, जिसके बाल मुसीबतें उठाते-उठाते, वक़्त से पहले आधे से ज़्यादा सफ़ेद हो चुके थे।

उसी रात सोते ही में प्रेमसिंह के हृदय की गति बन्द हो गई।

नीचे से हवा के झोंके के साथ बेले की ख़ुशबू का एक झोंका आया। लाजवन्ती ने एक आह भरी। उसकी ज़िन्दगी में शुरू से अभी तक एक ही चीज़ छाई हुई थी, इन्तज़ार—शौहर के जेल से आने का इन्तज़ार, उनकी कोशिशों का नतीजा निकलने का इन्तज़ार, हिन्दुस्तान के आज़ाद होने का इन्तज़ार, फिर अपनी दरख़्वास्तों का जवाब मिलने का इन्तज़ार, फिर बेटे के हर साल पास होने का इन्तज़ार। फिर उसे स्कॉलरशिप मिलने का इन्तज़ार, फिर नौकरियों की दरख़्वास्तों और इन्टरव्यू के नतीजे का इन्तज़ार, और जब कि उसे नौकरी मिल गई थी, उसके हर रोज़ रात को घर वापस आने का इन्तज़ार।

इधर कई महीनों से उनको शक था, कि निहाल के रात को देर से घर आने की कोई वजह है, जो उन्हें नहीं मालूम। लेकिन वह अब

तक उससे पूछ नहीं पाई थीं। उधर कई बार ऐसा भी हुआ, कि जब वह देर से वापस आया, तो उसके साथ कुछ लड़के भी थे। आपस में कुछ ऐसी बातें हो रहीं थीं, जैसी कि प्रेमसिंह १९४२ के आन्दोलन के बाद जेल से वापस आ कर किया करते थे। और दो-तीन लड़कियाँ थीं, जिनमें से एक हमेशा बाद में रुक कर निहाल को अँग्रेजी में न जाने क्या सुनाया करती थी। वह अमीनाबाद में ही कहीं रहती थी, और किसी प्राइमरी स्कूल में पढ़ाती थी। निहाल ने अपनी माँ को बताया था, कि उसने अपने स्कूल में टीचरों का संगठन बना रखा था।

इन लड़के-लड़कियों में से दो-एक बहुत ज़ोर से बहस करते थे, जो लाजवन्ती को बुरा लगता था। उनका शौहर जब स्टेज पर चढ़ कर बोलता था, तो उसकी आवाज़ बड़ी गरजदार होती थी। लेकिन घर में वह जब भी बात करता था, तो उसकी आवाज़ कमरे के दूसरे कोने में भी नहीं सुनाई देती थी। ऐसा ही उनका बेटा भी था। वह हमेशा आहिस्ता-आहिस्ता समझाने वाली, नर्म आवाज़ में बोलता था। उसे कभी गुस्सा नहीं आता था। रात-दिन काम करने के बाद भी वह कभी झुँझलाता नहीं था। और वह यह महसूस करती थीं, कि उसके साथ आने वाले लड़के-लड़कियाँ उसकी बहुत इज्ज़त करते थे, क्योंकि—क्योंकि वह बिल्कुल अपने बाप की-सी तबियत रखता था—मोम की तरह नर्म, फूल की तरह कोमल, मगर चट्टान की तरह अटल! उनको एकदम उस रात का सोता हुआ निहाल याद आ गया—पेट में घुटने टिकाये, सिरहाने किताबें उल्टी-पलटी रखी हुई, मैला-सा रबर का टुकड़ा, पेन्सिल के छोटे-से टुकड़े में खुट्टल-सी नोक, जिससे वह थूक लगा-लगा कर लिखता था। अब कौन यक़ीन कर सकता था, कि वही निहालसिंह इन्जीनियर बन गया है?

नीचे से खुशबू का एक और झोंका आया। लाजवन्ती को सर्दी-सी लगी। अक्टूबर का पहला हफ़्ता था। हल्की-हल्की बारिश हो रही थी। यह कैसी बेवक़्त की बारिश थी? निहाल अभी तक क्यों नहीं आया?

फिर बारहवीं बस आकर चौराहे पर रुकी। तीन-चार आदमी उतरे। उनमें निहाल भी था। उसके साथ वही लड़की। अपने घर आने के बजाय उस लड़की के साथ दूसरी गली की तरफ़ चलने लगा। गली के नुक्कड़ पर एक मिनट रुक कर, दोनों ने कुछ बात की, फिर लड़की गली में चली गई। निहाल अपने घर की तरफ़ बढ़ने लगा। एक हाथ में पोर्टफोलियो सँभाले, दूसरे से बालों को ठीक करता हुआ, वह तेज़-तेज़ चल रहा था। और फिर एक अजीब बात हुई। वह अपने घर की दो-दो सीढ़ियाँ एक साथ चढ़ने लगा।

लाजवन्ती अपने-आप मुस्कराई। ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ था।

और फिर आसमान पर क्षितिज के किनारे बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई दी।

६

लखनऊ यूनिवर्सिटी के एक होस्टल में महेन्द्र के कमरे में सोहन पलँग पर आड़ा लेटा था। सूरज और रामकुमार पलंग के पायताने और सिरहाने बैठे थे। वाहिद आराम कुर्सी के हत्थे पर बैठा था, और डेविड टाँगे फैलाये लेटा था। बहस हो रही थी।

"मैं कहता हूँ, हम सब को कम्पेन करना चाहिये। पिछले दो साल से यूनिवर्सिटी यूनियन बदनाम हो रही है, कि जब देखो तब कोई फिजूल-सा लड़का सेक्रेटरी हो जाता है। और टीचर यही कहते हैं। बाहर से आने वाले यही कहते हैं, कि गुन्डागिरी बढ़ रही है। लड़कियों

ने इसी के मारे एलेक्शन में आना ही छोड़ दिया ।....यह रस्तोगी जो खड़ा हो गया है, इसको तो बिल्कुल नहीं होना चाहिये। सब जानते हैं, कि पिछले साल जब हड़ताल हुई थी, तो उसने बाहर से गुन्डे बुलवाये थे। मेहता कह रहा था।"

"ख़ैर, एलेक्शन के ज़माने में तो लड़कियों से कोई कुछ नहीं कहता। हम लोग उनकी इतनी ख़ुशामद करते हैं। और फिर भी वे ऐंठें, तो, भई, क्या किया जाये ?" सोहन लेटे-लेटे बोला।

"वह तो आप को करनी पड़ेगी खुशामद। आधो-आध लड़कियाँ घुस आई हैं यूनिवर्सिटी में। जिस इम्तहान में देखो, लड़की टॉप कर रही है। कन्वोकेशन में देखो, तो हर साल लड़कियों की क़तार मेडल लेने चली जा रही है। ख़ैरियत है, कि लड़कियों को अभी तक यह ख्याल नहीं आया, कि किसी लड़की को खड़ा करें, वरना हम लोगों का डिब्बा ही गोल था। अच्छा ही है, कि लड़कियाँ न आयें वोट देने। वह सब मिल कर जिसे वोट देने पर तुल जायें, उसी की चाँदी है।" राजकुमार ने फ़ैसला किया।

सूरज ने एक हाथ उठाया। "अच्छा, अब इस वक़्त यह बहस रहने दो। यह तै करना है, कि हमारी कन्वैसिंग में ज़ोर कैसे आये। मैं तो, भई, रस्तोगी के बारे में सोच भी नहीं सकता। उसके पास रुपया ही तो है, और क्या।....इस साल यूनिवर्सिटी खुलने से पहले हम लोगों ने मीटिंग की थी, तो मैंने सुझाव दिया था कि नये स्टूडेन्ट्स को मदद देने के लिए एक कमेटी बना लें। बारी-बारी से पाँच-छः पुराने लड़के-लड़कियाँ रजिस्ट्रार के दफ़्तर पर रहें और नये लड़के-लड़कियों की मदद करें। मीटिंग में तो हाँ में हाँ मिलाता रहा, लेकिन जब काम का वक़्त आया, तो अपनी काली मोटर में बैठ कर भाग गया।"

राम कुमार बोला—"अब, यार, तुम यह सब रहने दो। निरे देहाती भरे हैं—बलिया, बस्ती और गोंडा के। मुंह खोले घूमा करते हैं। बताइये अब हम उनको क्या बतायें कि....सब सब्जैक्ट समझायें,

तब वह फ़ैसला करें। जिसे देखो, फ़ीस माफ़ करवाना चाहता है। लाख बताया कि साहब शुरू से फ़ीस माफ़ नहीं होती। लेकिन कुछ समझ में तो आता नहीं।....मैं तो भाई भुगत चुका हूँ पिछले साल। इसीलिये तो मैं तुम्हारी उस मीटिंग ही में नहीं आया।"

सूरज हँसने लगा—"हाँ-हाँ, मुझे सब पता है, कि आप क्यों नहीं आये। और जो कुछ आप भुगते थे, वह सब भी मैं जानता हूँ। ग्रुप बेचारे रामस्वरूप का सारा माल चट कर गया, और मदद उसकी कुछ भी नहीं की। तभी तो मैंने आप की रिपोर्ट प्रॉक्टर साहब के यहाँ कर दी थी। मगर आप चिकने घड़े ठहरे ! माफ़ी माँग कर के छूट गये।"

सोहन आँख नचाकर बोला—"अच्छा, भई, अब वह गुड़-उड़ तो हज़्म हो गया। अब ज़रा काफ़ी पिलवा दो। जिसकी कहो मैं उसी की कन्वैंसिग कर दूँगा। जो काम कहोगे, उसके लिए हाज़िर। ....अच्छा मुझे लड़कियों में कन्वैंसिग करने वाले ग्रुप का इनचार्ज कर दो।.... और यह बताओ, कि तक़रीर करने के लिये किस को बुलवाओगे ?"

"बुलवाना क्या माने ?" सूरज ने ज़रा हैरानी से कहा—"स्टूडेन्ट्स के अलावा किसी से कुछ कहलवाने की ज़रूरत नहीं। विमला कौल से मैंने कहा था। वह भी सुरेश की कन्वैंसिग करेगी। बहुत अच्छा बोलती है।"

"और ख़ूबसूरत भी है। याद नहीं, पिछले साल कोर्ट में उसने जो मुक़दमा लड़ा था ? हम तो, भई, अपना दिल हार गये। डिगरी हो गई, बिलकुल।" डेविड ने पाँव पसार कर कहा।

सूरज चिढ़ गया। "यार, तुम लोग कभी तो सीरियस हो जाया करो।....अच्छा, और मेडिकल कॉलेज की तरफ़ से मेहरोत्रा बोलेगा।.... आसिफ़ से साम्प्रदायिक एकता के मसले पर बात करवायेंगे।"

"लेकिन यह तो उसूल ही ग़लत है।" डेविड संजीदा हो गया। "इस मसले पर तो मेजारिटी कम्यूनिटी में से कोई कहे। माइनारिटी कम्यूनिटी वाले क्या कहेंगे ?"

सोहन भी उठ बैठा, आहिस्ता से बोला "भाई, मेरी बात मानो, तो किसी मुसलमान से तक़रीर न ही करवाओ, तो अच्छा।"

सूरज गुस्से में भर के बोला "वह क्या यूनिवर्सिटी के बेहतरीन छात्रों में से एक नहीं, लखनऊ में क्या उसके बाप-दादों की हड्डियाँ नहीं गड़ी हैं, वह क्या हम लोगों का दोस्त नहीं है ?"

"भई खफ़ा न हो। तुम तो जानते हो, कि आसिफ़ मेरा सबसे प्यारा दोस्त है। लेकिन हरसिंह को जानते ही हो। वह रस्तोगी की कन्वैसिंग कर रहा है। वह छूटते ही हिन्दू-मुस्लिम फ़ीलिंग खड़ी कर देगा। फिर इतनी गड़बड़ी होगी, कि सँभाले नहीं सँभलेगी।....मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ। कहीं आसिफ़ बेचारे को भी आफ़त में फँसवा न देना जोश में आकर।"

महेंद्र ने गर्दन आगे बढ़ा कर कहा—"हाँ, यार, मैं भी तुम्हें यह बताने वाला था, कि अमरसिंह और विमला से परसों लाइब्रेरी में झगड़ा हो गया। विमला ने शायद कुछ लड़कों से कहा था, कि 'सुरेश को वोट देना।' सो अमर सिंह ने उससे बदतमीज़ी की। कहने लगा—'आप बड़ी जवाहरलाल नेहरू की सगी बनती हैं, बड़ा सेकुलरिज़्म का प्रचार करती फिरती हैं। ज़मींदारी चली गई, तो क्या हुआ ? मेरे पास चार बन्दूकें हैं। ठाकुर का लड़का हूँ। कोई हँसी-खेल नहीं है। आपको देख लूँगा। आपकी सारी कानूनदानी निकल जायेगी'।"

"फिर ?" सूरज ने पूछा।

"फिर विमला ने भी खूब सुनाई। कहा—'ज़रा होश में रहियेगा। आपकी सारी ठकुराई झाड़ दूँगी। इतनी चप्पलें मारूँगी, कि सर गंजा हो जायेगा। मेरे भी सैकड़ों साथी हैं। इस शेख़ी में न रहिये। सब जानते हैं, कि आपकोयू निवर्सिटी में न पढ़ना है, न लिखना है, यही गुंडगी करनी है'।"

डेविड ने ताली बजाई। "हैप-हैप....अच्छा फिर ?"

"फिर कुछ लड़के-लड़कियों ने बीच-बचाव किया ही था, कि चन्द्रा

साहब किसी काम से लाइब्रेरी में आ गये। सो आँख बचा कर अमरसिंह खिसक गया।"

"अमर तुम्हें यह सब किसने बताया ?"

"सरदार जोगेन्द्र सिंह ने। वह वहाँ एक किताब इशू करवाने गया था।"

"अमाँ, वही सरदार, जो उस दिन अपने स्कूटर पर दो लड़कों को बिठाये लिये जा रहा था ?"

"हाँ-हाँ वह सोश्योलॉजी एम० ए० में है।....वह भी सुरेश की कन्वैंसिग कर रहा है।"

रामकुमार ज़रा घबरा कर बोला—"भई, यह सब तो बड़ी गड़बड़ी हो रही है। यार, मैं तो एलेक्शन के दिन आऊँगा ही नहीं, भाग जाऊँगा।"

सूरज गम्भीर हो कर बोला—"यही तो मुश्किल है कि ज़्यादा अच्छे लोग भाग जाते हैं कि कौन गड़बड़ी में फँसे। बहुत-से लोग कहते हैं कि यह सब बेकार बातें हैं। बहुतों को फ़ुरसत नहीं कि आयें। तो फिर अमरसिंह जैसे लोगों को हराया जाये तो कैसे ? बहुत-से अच्छे इन्सान मिल कर जब तक क़ानून अपने हाथ में नहीं लेंगे, तब तक यह थोड़े से गुन्डे तो हमारी ज़िंदगी मुसीबत कर देंगे। सब मिल कर ज़ोर लगायें, तभी कुछ हो सकता है।"

"तब भी नहीं हो सकता," सोहन ने कहा—"यह जो रस्तोगी तमाम कहता फिर रहा है कि 'मैं अगर हार गया तो यूनियन की ग्रांट रुकवा दूंगा। मेरे फलाँ मिनिस्टर हैं, मेरे फलाँ इतने बड़े वकील हैं। यूनिवर्सिटी रजिस्ट्रार को हम लोगों ने रजिस्ट्रार बनवाया है, वरना उनको कौन पूछता ? खज़ान्ची मेरी मुट्ठी में है। जीतने दो किसी और को। अगर उसके खिलाफ मुक़दमा चला कर एलेक्शन को नाजायज़ और ग़लत न साबित करवा दूं, यूनिवर्सिटी के क़ानूनों को न बदलवा दूं, यूनिवर्सिटी के अन्दर पुलिस बुलवा कर हल न चलवादूं, तो मेरा

नाम रस्तोगी नहीं।' अब बताइये, इस सब का क्या कीजियेगा आप ?"

"मगर वह एलेक्शन में गड़बड़ी कैसे करायेगा ? एलेक्शन के वक़्त तो टीचर्स रहते हैं, वही बैलेट पेपर देते हैं। वही वोट गिनते हैं।" महेन्द्र बोला।

रामकुमार कुर्सी पर पहलू बदल कर बोला—"यार, तुम भी निरे भोंदू हो। जानते नहीं हो टीचरों को ?"

"क्या कहते हो, यार ? क्या माथुर साहब पर भी कोई बेईमानी का शक कर सकता है ?"

"अमाँ, एक माथुर साहब ईमानदार सही—बाकी जिस-जिस को रीडरशिप लेनी है, दूसरे को ग़लत साबित करना है, बाहर जाने की छुट्टी माँगनी है, अपने भतीजों-भाँजों-दामादों को फ़र्स्ट क्लास दिलवाना है, जो हजारों को इक्ज़ामिनरशिप और बँगले और चपरासी, और डिपार्टमेंट जीपें, इन सब की उम्मीद लगाये बैठें हैं, वे क्या इस बात की परवाह करेंगे, कि आसिफ़ को अपनी बात कहने का हक़ दिया जाये ? किस दुनिया में रहते हो, भाई ? मेरी मानो, तो आसिफ़ को समझा दो।....मगर उससे कहेंगे कैसे ?" सोहन खुद ही हैरान होकर सोच में पड़ गया।

दरवाज़े पर दस्तक हुई। सूरज ने उठ कर दरवाज़ा खोला। आसिफ़ हाथ में एक फ़ाइल और दो किताबें थामे दाखिल हुआ। "अरे आप लोग यहाँ बैठे मिस्कौट कर रहे हैं। वर्मा साहब के क्लास में नहीं गये ?"

सोहन बोला—"छोड़ो, यार, वर्मा साहब को। कुछ पढ़ाते भी हैं ? परसों मेरे नोट्स की कापी मेज़ पर रखी थी। पापा ने उठा ली। इधर-उधर से देख कर मुझसे बोले, कि 'बाइस बरस पहले इन्होंने हमको भी यही नोट लिखवाया था, और हम से कहते रहते थे, कि आजकल के लड़के बड़े नालायक़ होते हैं।' सो वह हम लोगों से भी यही कहते रहते हैं।"

आसिफ़ ने किताबें मेज़ पर रख दीं, और पलँग के एक कोने पर बैठता हुआ बोला –"बाहर खूब बादल हैं। लगता है कि पानी बरसेगा। बूंदा-बाँदी शुरू भी हो गई है।"

"तो आप बारिश ले के आये हैं," राजकुमार कहने लगा "आप से यही उम्मीद थी। अब हम घर कैसे जायेंगे? बरसाती भी नहीं लाये।....अच्छा, बारिश ले के आए हो, तो काफ़ी तो मँगवाओ।"

इतने में दरवाज़ा फिर खुला। चपरासी मक्खनलाल दाख़िल हुआ, और सोहन से मुख़ातिब हुआ। "भइया जौन पिक्चर के टिकट मँगवाये रहो, तौन तो नहीं मिले। ब्लैक में मिलत रहे चार-चार रुपया। हम नहीं लिहा।" मक्खन ने सर पकड़ लिया। "हे भगवान! अरे, ई अनवरसिटी की यौनियन से ई भी नहीं होत, कि कबहू हम गरीबन का भी पिक्चर दिखाय देयँ।"

"अच्छा लाओ, भई, छोड़ो?....अच्छा हुआ कि नहीं मिले। पैसे बचे।....और देखो, तुम जा के हम सबके लिये काफ़ी ले जाओ। और बिल आसिफ़ भइया के नाम लाना। और दीना के यहां से थोड़े पकौड़े भी ले आना—आलू वाले। उसका बिल सूरज साहब के नाम लाना।"

फिर उसने मुड़ कर देखा, तो आसिफ़ और सूरज एक पर्चा सामने रखे बहस कर रहे हैं। सूरज बार-बार कह रहा था -"नहीं, यह बात ज़रूर कहो। क्यों न कहो? जब कि यह बात है, तो क्यों न कही जाए?"

रामकुमार भी उन लोगों के पास बैठा, अपनी राय दे रहा था -"ऐसा ही है, तो यह जनसंघ वाली बात मेहरोत्रा से करवा सकते हैं, या विमला कहे। वह तो अरुणा आसिफ़ अली है अपने वक़्त की।"

"हाँ, भई, सोच लो," आसिफ़ ने कहा –"वैसे मैं कहने को तैयार हूँ। लेकिन अगर उससे एलेक्शन पर बुरा असर पड़े, तो क्या फ़ायदा? इस वक़्त तो सबसे बड़ा मक़सद यह है न कि सुरेश जीत जाये? बाकी और लड़ाइयाँ बाद को देखी जायेंगी।"

सूरज भी मुत्तफ़िक होकर बोला—"अच्छा, तो तुम यह बात रहने दो।....और बाकी पाइंट्स ठीक हैं न ?

"हाँ, वह सब ठीक हैं।"

"अरे भई, तो क्या यह बिलकुल ठीक तै कर लिया, कि बाहर से कोई लीडर नहीं आयेगा ?" सोहन ने दूर से पूछा।

महेन्द्र ने पल भर रुक कर जवाब दिया—"बाहर से आने के क़ाबिल है भी कौन ? जितने लीडर आयेंगे, उतनी डफलियाँ होंगी और उतने राग होंगे। और उनका इन्तज़ाम करते-करते मर जायेंगे हम लोग। आख़िर ज़रूरत क्या है किसी पेशेवर लीडर की ? हम लोग क्या अपनी बात नहीं कह सकते ?"

"मगर, भई, तक़रीरों के बीच-बीच में शेरो-शायरी ज़रूर हो," डेविड ने राय दी।

"हाँ, यह ख्याल अच्छा है। लखनऊ में बहुतेरे शायर मिल जायेंगे। मगर, यार डेविड, तू यह बता कि शेर तेरे क्या समझ में आते हैं ?"

"आजकल तो किसी की समझ में कुछ नहीं आता, भइया। मुझ बेचारे को क्यों कहते हो ? उर्दू तो हमारे हाथ से छूट गई। हिन्दी अभी तक आई नहीं। और अंग्रेज़ी तो, ख़ैर, कभी नहीं आई, तो अब क्या आयेगी ? आजकल की जेनरेशन तो बेज़बान है बेचारी।"

"असल में आजकल की जेनरेशन है नालायक़। तभी तो सब लीडर कहते हैं, कि नौजवान किसी मसरफ़ के नहीं रहे।" सोहन ने सूरज को छेड़ा।

महेन्द्र बिफर कर बोला—"उन्होंने किसी मसरफ़ का रखा था ? मेट्रिक पास करके नौकरी ढूँढ़ी, तो नहीं मिली। इन्टर करके ढूँढ़ी तो, नहीं मिली। बी० ए० करके ढूँढी, तो नहीं मिली। अब एम० ए० कर रहे हैं। और इसके बाद एल-एल० बी०, फिर एम० एस० डब्लू०। और उसके बाद न हल थामा जायेगा, न रहट चलाने की हिम्मत रहेगी, न हँसिया सँभलेगी। धोबी के कुत्ते हो जायेंगे—न घर के न घाट के!"

"अच्छा और उसके बाद ?" सोहन महेन्द्र को गुस्सा दिला कर बड़ा लुत्फ़ लिया करता था।

"उसके बाद जब घर जायेंगे तो अम्मा कहेंगी कि 'बेटा छल्ला-छल्ला तो तुम्हारी पढ़ाई में बिक गया। रोटी कहाँ से पकाऊँ ?' खिसिया के घर से निकलेंगे, रास्ते से कुछ ईंटें उठायेंगे। इरादा तो यही होगा, कि अपने सिर पर मार लें, मगर सामने जो बस खड़ी होगी, उस पर फेंक देंगे। गिरफ़्तार होकर जेल जायेंगे। वहाँ रेत-मिली रोटियाँ तो मिलेंगी।"

"हिप—हिप"—डेविड ने ताली बजाई।

"और इसके बाद ? तुम्हें एक और क़िस्सा सुनाता हूँ।" महेन्द्र बोला—"कल हमारे यहाँ एक साहब एक बड़ी-सी मोटर में बैठ कर आये थे। पहले किसी फ़र्म में खजान्ची थे। एक दिन माँ बहुत बीमार थी। बड़े साहब के पास गये कि 'हुजूर पचास रुपया पेशगी दे दीजिये।' उन्होंने कहा 'हमारे फ़र्म में पेशगी देने का क़ायदा नहीं है।' मारे गुस्से के माँ के पास हास्पिटल जाने के बजाय दफ्तर के चालीस हज़ार रुपया ले के भाग गये। दस-बीस दिन ग़ायब रहे, फिर मिले। क़बूला, कि 'हाँ, चुराया था रुपया, मगर अब कुछ बचा नहीं। यार-दोस्तों में शराब पी डाली, जुआ खेल डाला। तीन साल की क़ैद हुई। क़ैद में नेकचलनी की छूट मिला के ढाई साल में छूट गये। उस रुपये से बिज़-नेस शुरू की। अब ठाठ से रहते हैं। उन्होंने मुझे बड़ी नसीहतें कीं, कि बेटा किसी तरह भी हो, बस पैसे बना लो। फिर लोग सब भूल-भाल जाते हैं। और मोटर में बैठ के जिसके यहाँ जाओगे, वही इज्ज़त करेगा।"

"और माँ ?" आसिफ़ ने पूछा।

"वह मर गई होगी। वह तो वैसे भी मर जाती।" सोहन ने राय दी।

"नहीं, शायद वह जी जाती," सूरज बोला।

"तू अपनी शायद को लिये बैठा रह। शायद यह हो जाये, शायद वह हो जाये। शायद हिन्दुस्तान में सोशलिज़्म आ जाये, शायद इन्क़लाब हो जाये। फिलास्फर कहीं का!"

आसिफ़ आहिस्ता से बोला—"सोशलिज्म के लिये शायद का सवाल नहीं। वह तो यक़ीनन आयेगा।"

"अच्छा फिलहाल तो मक्खनलाल आ गये हैं काफ़ी समेत, वह पियो।" सोहन उछल कर बिस्तर पर से खड़ा हुआ, कमर पर पतलून ठीक की और दरवाज़ा खोला।

मक्खनलाल ने मेज़ बीच में रखी। ट्रे पर पानी की बूंदें भी आ गई थीं। अँगोछे से मुँह पोंछता हुआ बोला—"भइया, पानी आय गवा। और काले बादल घिरा है। लगत है, व खूब बरसि है।"

७

आज दीपा और निहाल बाहर निकले, तो बारिश थमी ही थी—बारिश जो कई दिन से इस क़दर शिद्दत से हो रही थी, कि जिसका कोई हिसाब नहीं था।

गली से गुज़रते हुए दाहिने हाथ को एक छोटी-सी पान की दुकान थी, जिस पर चाय और बिस्कुट भी मिल जाते थे। दुकान के आगे दो बेंचें थी, और उनके बीच में घटिया लकड़ी की हिलती हुई तीन-चार मेज़ें। एक छोटा-सा लड़का, फटे-पुराने कपड़े पहने, नंगे पाँव, नाक सुड़कता हुआ, खड़ा भट्टी को पंखे से धौंके जा रहा था और बार-बार पैर बदलता था। भट्टी के पास ही बने संदले पर सिद्दीक़ चाय वाला,

उकड़ूँ बैठा, एक जासूसी उपन्यास पढ़ रहा था। गली की तरफ़ बिछी बेंच पर एक दुबला-पतला, सूखा, सहमा बूढ़ा आदमी चिकन के कुर्ते पर घिसी हुई शेरवानी, दोपल्ली टोपी, मैला-सा अरज़ का पायजामा, हाथ में तसबीह, माथे पर नमाज़ का घट्टा, टाँग पर टाँग रखे, ऊपर वाली टाँग को बराबर हिलाये जा रहा था, और साथ ही साथ तसबीह को भी। उसके सामने भाप निकलती हुई, बेहद गर्म चाय की एक प्याली रखी थी।

ये लोग दीपा को अक्सर निहाल के साथ या अपने साथी टीचरों के साथ शाम को निकलते देखा करते थे। इस वक़्त भी सिद्दीक़ और बूढ़े की नज़रें उठ गयीं, अलबत्ता लड़का उसी तरह भट्टी धौंकता रहा। बूढ़े के हाथ की तसबीह रुक गई, और टाँग भी रुक गई। दाढ़ी पर हाथ फेर कर, अफ़सोस करने वाले अंदाज़ में सिर हिलाता हुआ बोला -- "बेचारे मास्टर साहब पर बड़ा तरस आता है, भई। लड़की को देखो, लीडर बनी जा रही है।"

सिद्दीक़ बोला—"यह सब खाने-कमाने के बहाने हैं, नवाब साहब ! ....बात यह है, कि आजकल लीडरी में जितना फ़ायदा है, उतना किसी पेशे में नहीं है। पाँचों घी में रहती हैं, और सर कढ़ाई में ! अब यही देखिये, शर्मा जी को। कांग्रेस के जमाने में चार दिन जेल रह आये, एलेक्शन जीत गये, अब धड़ाधड़ परमिट बाँटने लगे —मिट्टी के तेल का परमिट, दवाओं का परमिट, रिक्शा का परमिट। लीजिये, महाराजधिराज हो गये। मंत्रियों की कालोनी में कोठी बनवा ली, मोटर में घूमते हैं। ...आज आप चाय के साथ बिस्कुट नहीं ले रहे हैं, नवाब साहब !"

"भाई, तुमसे तो कहा था, कि दादा मरहूम की वह क़द्दे-आदम आईने वाली आलमारी बिकवा दो, पर तुमने समात ही नहीं किया। तुम्हारे पहले के पैसे तो दिये नहीं गये अब तक। और कैसे लेते चले जायें ?"

"वाह, नवाब साहब ! यह क्या फ़रमाया आपने ? आपके पैसे कहाँ

जाते हैं ? और आलमारी के लिये तो मैंने कई जगह जिक्र किया था, मगर हुज़ूर लोग कहते हैं, कि, भई, अब छोटे-छोटे घर बनते हैं। कमरे में इतनी बड़ी आलमारी रख दें, तो खुद कहाँ रहें ? और—अरे सरकार, यह सब सामान अंग्रेज़ लोग अपनी कोठियों-बंगलों में सजाते थे। सो अब वह बात ही कहाँ रही ? मगर आप बिस्कुट तो नोश कीजिये। अबे महमूद, तश्तरी में बिस्कुट ला।"

लड़के ने अन्दर एक छलाँग लगाई, और सामने धुआँ लगी काली आलमारी में रखे हुए एक छोटे-से कनस्तर में हाथ डाल कर दो बिस्कुट निकाले और एक चाय की पिरिच में रख कर नवाब साहब के सामने रख दिये।

नवाब साहब ने एक को तोड़ कर चाय में डाला, और बोले—"अब तो हर क़दम पर यह महसूस होता है, भाई, कि पुरानी तस्वीर चाहे जितनी उम्दा रही हो, मगर अब वह इस चौखटे में बैठे कैसे ? ....मेरी पोती पर्दे के बाहर आये कैसे ? आठ आना फ़ी कुर्ता मज़दूरी और इतनी मेहनत। सब यही कहते हैं, कि 'चौक वाले लाला जी आप सबको ठगते हैं। साढ़े-तीन रुपये का मलमल और आठ आने चिकन की मज़दूरी लगा कर दस रुपया फ़ी कुर्ता बेचते हैं'।"

"मैंने सुना है, नवाब साहब, कि सरकार ने भी चिकन के काम के डीपो खुलवा दिये हैं, और वहाँ अच्छी उजरत मिलती है।"

"वह तो मैंने भी सुना है। मगर सवाल यह है न कि वहाँ ले जा कर देना पड़ता है, काम लाना पड़ता है। हम लोगों से यह हो नहीं सकता, कि किसी के दरवाज़े पर जायें। लाला जी अपना नौकर भेज कर काम मँगवाते हैं। और जब दुकान पर जाओ, तो खड़े हो जाते हैं, और झुक कर सलाम करते हैं। अब हम लोग अपने क़ायदे बदल नहीं सकते। मुरौवत और आँख का लिहाज भी कोई चीज़ है। वह हम लोग तोड़ नहीं सकते।....हम पर सब-कुछ गुज़र जाये, पर हम अपनी नाक नहीं कटवा सकते, सिद्दीक़!....हम लोग—" वह टाँग हिला-

हिला कर, तसबीह पढ़ते और चाय पीते हुए बड़बड़ाते रहे।

निहाल और दीपा गली से बाहर निकले। सड़क पर आकर निहाल ने एक रिक्शे वाले को बुलाया। "काठ के पुल का कितना?"

"काठ का पुल?" दीपा ने हैरान होकर उसे देखा। "तुम तो हुसैनाबाद चलने को कह रहे थे?"

"वहाँ भी चलेंगे। पहले ज़रा काठ के पुल तक चलो।"

दोनों रिक्शे में बैठे।

निहाल बोला—"अभी वक़्त काफ़ी है। इसीलिये मैंने रिक्शा ले लिया, कि बस के इन्तज़ार में देर लगेगी।"

रिक्शा अमीनाबाद से काठ के पुल की तरफ़ जाने के लिये क़ैसर-बाग़, बारादरी के सामने से होता हुआ शाह नजफ़ रोड पर आ गया, और फिर सिकन्दर बाग़ के सामने से मुड़कर काठ के पुल के नीचे पहुँच गया। निहाल ने उसे पैसे दिये, और दीपा से बोला—"आओ।"

"मगर तुम मुझे यहाँ क्यों ले आये, भई?"

"तुम आओ तो।"

दोनों जाकर पुल के बीच में खड़े हुए। दीपा बोली—"ओफ्फ़ोह! गोमती तो बहुत चढ़ गई है। अमीनाबाद में बैठकर तो कोई सोच भी नहीं सकता, कि यहाँ यह हालत है।"

"मैं तुम्हें यही दिखाने लाया हूँ, कि अगर गोमती में पानी यूँ ही बढ़ता रहा, ऐसी ही धारा चलती रही जैसी कि है, तो इस साल यह बाँध जवाब दे जायेगा।"

दीपा की साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। "हाय! तो फिर तो यह सारा हिस्सा, यह तमाम इलाक़ा डूब जायेगा।"

"ऐसे डूबेगा। यकायक पानी आयेगा, और मेरा अंदाज़ा है, कि काफी ऊँचा होगा। क्योंकि जब इधर भरेगा, तो उधर नशेब तक जाते जाते उसकी सतह कम-से-कम आठ या दस फ़ीट होगी। और उसकी

रफ़्तार इतनी तेज़ होगी, कि इस तीन-चार मील के इलाक़े में पन्द्रह-बीस मिनट के अन्दर-अन्दर विभिन्न सतहों पर दस से लेकर बारह-चौदह फ़ीट गहरा पानी होगा।"

"मगर तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ ?" दीपा ने भोलेपन से पूछा।

निहाल हँसने लगा। "मेरा ख्याल था, कि तुम्हें मालूम है, कि मैं इंजीनियर हूँ। बाँधों और पुलों पर मैंने स्पेशलाइज़ किया है।"

"मगर हम लोगों ने तो सुना है, कि इस साल बाँध की मरम्मत की गई है।"

"वह तुमने ठीक सुना। हुई तो थी मरम्मत। मगर उसका ठेका एक मंत्री के भतीजे को दिया गया था। और उसने सिमेंट में जो मिलावट करवाई है, वह भी एक बहुत बड़ी वजह है, जिससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ, कि यह बाँध नहीं ठहरेगा।....वैसे मंत्री के भतीजे को सीमेंट के बजाय कीचड़ लगा कर इतना मुनाफ़ा मिल गया है, कि वह ज़िन्दगी भर के लिये काफ़ी है।"

"पर तुम्हें कैसे पता चला, कि सीमेंट में मिलावट है ? तुम ने तो इसकी मरम्मत में हिस्सा नहीं लिया था।" दीपा उलझने लगी।

"तुम जितने बच्चों को पढ़ाती हो, उन सब को यक़ीनन तुमने तो नहीं पैदा किया है, दीपा, न उनको शुरू से पढ़ाया है, न उनकी ज़हानत का कोटा दाख़िले के वक़्त मालूम किया था। मगर उनमें से हर एक का टेस्ट लेकर तुम बता सकती हो न, कि वह हिसाब में कितना कमज़ोर है ?"

"ज़रूर बता सकती हूँ, यक़ीनन। मगर—"

"मगर क्या ?....मैं और मेरे दो साथी इंजीनियर इस बाँध की जाँच कर चुके हैं।"

"तुमसे किसने कहा था जाँच करने को ?"

"किसी ने नहीं।....कहेगा कौन ? क्या तुम समझती हो, कि इस

वक़्त यहाँ की हुकूमत में किसी को यह भी परवाह है, कि यह बाँध टूटेगा, तो कितना नुक़सान हो सकता है, कितने लोग मर सकते हैं? बल्कि उनके हिसाब से तो शायद ठीक ही होगा। और दो-चार भतीजों को ठेके मिल जायेंगे।"

"ओफ्फ़ोह! तुम कैसी कड़वी बातें कर रहे हो, निहाल? मैंने तो तुम्हें इस तरह बात करते पहले कभी नहीं सुना।"

"दीपा, यह तो सिर्फ़ बातें हैं। हम नौजवानों के दिल में इतना गुस्सा है, कि तुम देखना, आगे क्या होता है। आख़िर हमारी बर्दाश्त की भी एक हद है। और जब हद से आगे चली जाये सूरते हाल, तो क्या होगा, सिवाय इसके कि लोग—मरता क्या न करता पिस्तौल उठायेंगे। और फिर यह होगा, कि नौजवान अशान्ति फैला रहे हैं। तुम मेरे कुछ साथियों से मिल कर बात करो, तो तुम्हें पता चले। मैं तो कम्यूनिस्ट हूँ, इसलिये बड़ा सख़्त कन्ट्रोल रखता हूँ। वरना जी तो मेरा भी यही चाहता है, कि इस सूरतेहाल को डायनामाइट लगा कर उड़ा दूँ, फट पड़ूँ इनके ख़िलाफ़।"

"मगर इस वक़्त तुम लोगों ने कुछ किया है? कुछ करो न। यह तो बड़ा सख़्त ख़तरा है।"

"कल हम लोग बड़े इंजीनियर के पास जायेंगे, वज़ारतों में जायेंगे, चीफ़ मिनिस्टर से मिलेंगे। मेरे ख़्याल में अब इसको टूटने से तो कोई ताक़त रोक नहीं सकती, मगर लोगों को होशियार कर दिया जाये, तो बहुत-कुछ बच जायेगा। मगर चीफ़ मिनिस्टर साहब को हम लोगों से मिलने की फ़ुरसत ही कहाँ होगी? आजकल दिल्ली वाले उनको कस रहे हैं, सो वह दिल्ली और लखनऊ के बीच दौड़ते रहते हैं। वैसे एक बात है। तुम अगर अपने भगवान से दुआ माँगो, तो शायद यह पानी टल जाये।" और उसने कनखियों से दीपा की तरफ़ देखा। उसकी नज़रों में प्यार, तन्ज़ और छेड़, सब का मिलाप था।

दीपा बिगड़ गई। "निहाल, भाई मैंने तुम से कितनी बार कहा है,

कि तुम भगवान का मज़ाक मत उड़ाया करो। मुझे यह बात अच्छी नहीं लगतीं।" और वह निहाल की तरफ़ से पीठ मोड़ कर पुल से उतरने लगी। निहाल मुस्कराता हुआ चुपचाप उसके पीछे चलने लगा, और फिर बराबर में आ गया।

दीपा चलते-चलते बोली—"पानी भी इंसान का कैसा दुश्मन है !"

निहाल एकदम रुक गया। "दीपा, बाज़ वक़्त तुम ऐसी बात करती हो, कि मुझे यक़ीन नहीं आता कि तुम पढ़ी-लिखी हो। पानी तो इंसान का सब से बड़ा दोस्त है—उतना ही बड़ा जितनी कि आग।"

"आग ?" दीपा चौंक पड़ी।

"हाँ, पानी, आग, बिजली, ये सब इन्सान के दोस्त हैं, अगर उनका इन्तज़ाम किया जाये। दुश्मन हैं, अगर उनसे लापरवाही बरती जाये। यही पानी अगर राजस्थान पहुँचा दिया जाये, तो सहरा में गेहूँ और गुलाब पैदा हो, मेरी जान !"

दीपा हँसने लगी। "तुम भी क्या ख़्वाब देखते हो, निहाल ?.... कहाँ राजस्थान, कहाँ लखनऊ। न सही तो कोई सात सौ मील का फ़ासला होगा।"

मगर निहाल उसी तरह गम्भीरता से क़दम उठाता रहा। "जब पिता जी यह ख़्वाब देखते थे, कि हिन्दुस्तान आज़ाद होगा, तो उनके बहुत से दोस्त उन पर इसी तरह हँसते थे। जब वह यह ख़्वाब देखते थे, कि हिन्दुस्तान में सोशलिज़्म होगा, तो वह दोस्त और भी ज़्यादा हँसते थे। और ये ऐसे दोस्त थे, जिन्होंने आज़ादी के लिये कुछ नहीं किया था। मगर मेरी माँ को अपने शौहर के ख़्वाबों पर भरोसा था। उन्होंने हमेशा उनको सराहा, उन पर यक़ीन किया।....अगर मैं यह ख़्वाब देखता हूँ, तो....कम-से-कम तुम न हँसो, दीपा। ज़िन्दगी में ख़्वाब देखना बहुत ज़रूरी है। क्या सोच रही हो ?"

दीपा ने एक नज़र उसको देखा चलते-चलते। "ख़्वाब की बात पर याद आता है, कि—एच० जी० वेल्ज़ ने लिखा था : 'क्रेमलिन में

एक शख्स रहता है, जो अनपढ़ जनता के द्वारा रूस भर में बिजली की रोशनियों से प्रकाश ही प्रकाश फैला देने का ख्वाब देख रहा है।'.... जब एच० जी० वेल्ज़ रूसी इन्क़लाब के बाद ही पहली बार वहाँ गये थे, तब उन्होंने वहाँ से वापस आकर यह लिखा था न? है न?"

"हाँ। मगर क्रेमलिन के उस शख्स का ख्वाब सच्चा साबित हुआ न?"

"हाँ।....हुआ तो—हुआ तो ज़रूर।"

"बस, तो ठीक है।....बहस खत्म। आओ, सिकन्दर बाग़ का फाटक आ गया।....दो-चार मिनट को अन्दर चलोगी? आजकल यहाँ हरसिंगार के फूल इतने टपक रहे हैं, कि सिकन्दर बाग़ महक रहा है। मैं पिछले चार-पाँच दिन से अपने दोस्तों के साथ इधर से रोज़ गुज़रता हूँ। तभी मैंने सोचा था, कि तुम्हें एक दिन ज़रूर लाऊँगा।"

"अच्छा, तभी आप चार-पाँच दिन से ग़ायब थे," दीपा बोली।

निहाल हँसा। फिर दोनों अन्दर मुड़े। दीपा ने कहा—"मेरी माँ हरसिंगार के फूल सुखा कर उसकी डन्डियों के रंग में मीठे चावल पकाती थी, और जाड़ों में रज़ाइयों को भी उसी से रँगती थीं। उन अस्तरों से बड़ी अच्छी महक आती थी।"

निहाल ने अपना रूमाल निकाल कर एक बड़े से पुराने घने पेड़ के नीचे बिछा दिया और कहा—"आओ, बैठो।"

दीपा बैठ गई। निहाल उसके बिलकुल पास ही दूब पर बैठ गया, और ज़रा और क़रीब खिसक कर, उसे अपने दाहिने बाज़ू के घेरे में लेकर बायें हाथ से उसके मुँह पर आई हुई एक लट को कान के पीछे करता हुआ बोला—"इस दरख़्त से ग़दर के ज़माने का एक वाक़या जुड़ा हुआ है। तुम जानती हो?"

दीपा ने ज़रा हैरान होकर नज़रे उठायीं, और त्योरी सिकोड़ते हुए बोली—"ग़दर के ज़माने का वाक़या? नहीं, मैंने तो नहीं सुना।....बताओ।"

"यह तो जानती हो न, कि लखनऊ ने आखीर वक़्त तक हथियार नहीं डाले थे, और अंग्रेज़ों के मुक़ाबले पर थी लखनऊ की एक औरत —बेगम हज़रत महल ।"

"हाँ, यह मुझे मालूम है।"

निहाल ज़रा भावुक हो गया। "हमें अपने शहर पर नाज़ है, दीपा । यह ख्यालों और दिल वालों का शहर है। यह सम्मान और प्रतिष्ठा वालों का शहर है। यहाँ साम्प्रदायिक फ़साद नहीं हुआ । यह दोस्तों, रफ़ीक़ों का शहर है।" फिर ज़रा रुक कर बोला "और तुम्हें यह मालूम है, कि जहाँ इस वक़्त हम लोग बैठे हैं, यहाँ बेगम हज़रत महल की फ़ौज से अँग्रेजी फ़ौज की एक ज़बरदस्त झड़प हुई थी।"

"हाँ, मैं जानती हूँ। अंग्रेजों की फ़ौज इधर ही से तो आई थी।"

"तो जब बेगम हज़रत महल की फ़ौजें हार गईं, तो अंग्रेजी फ़ौज ने सिकन्दर बाग़ में पड़ाव डाला। और यहाँ कैम्प में खाने वग़ैरा की तैयारी ही हो रही थी, कि यकायक एक घने पेड़ से एक गोली दग़ी। वह पेड़ यही था।" निहाल ने सिर उठा कर दरख़्त को देखा। "उस गोली से एक अंग्रेज़ सिपाही मर गया। फ़ौज में खलबली मच गई। दरख़्त को घेर लिया गया, और घने पत्तों में कोई छुपा बैठा मालूम हुआ। उसको बार-बार हुक्म दिया गया, कि वह उतर आये। मगर वह नहीं माना, और वहीं बैठे-बैठे बराबर गोलियाँ चलाता रहा। जब सब गोलियाँ चल चुकीं, कई अंग्रेज सिपाही मर चुके, और नीचे से भी बहुत गोलियाँ चल चुकीं—जिनमें से एक भी उसको नहीं लगी—तो उसने अपने पिस्तौल की आख़िरी गोली अपनी कनपटी में मार ली और नीचे आ गिरा। जब अंग्रेज़ सिपाहियों ने लाश को उठाया तो वह हैरान रह गये, क्योंकि वह एक औरत थी।"

"औरत ? ....नहीं-नहीं।....यह सही नहीं हो सकता।"

"यह सही है।....और मैं जब कभी किसी पेड़ में सिंदूर लगा देखता हूँ, तो मुझे-ख्याल आता है, कि लखनऊ के लोग इस पेड़ में सिंदूर क्यों

नहीं लगाते ? वे जुर्रत, हिम्मत और वफ़ा के इस मन्दिर को क्यों भूल गये, दीपा ? ....जब हमारे मुल्क में सोशलिज़्म होगा, और शहीदों की यादगारें बनाई जायेंगी, तो मैं इस पेड़ के नीचे एक फ़ौवारा बनाऊँगा, जिससे हरसिंगार का महकता हुआ पानी निकला करेगा।" फिर वह ज़रा रुक कर बोला —"दीपा, तुम सोचती होगी, कि मैं हमेशा तुमसे ऐसी ही बातें करता रहता हूँ प्यार-मुहब्बत की बातें छोड़ कर सोशलिज़्म का ज़िक्र, लेकिन अपने ख्वाबों की बात तो इन्सान उसी से कर सकता है न, जिससे वह प्यार करता हो, जिसके बारे में उसे यक़ीन हो कि वह उसके ख्वाबों को सच मानेगा, उन ख्वाबों को पूरा करने में उसके संघर्ष में उसका साथ देगा।....दीपा, फिर तुम ने क्या सोचा ? तुम मेरी दरख्वास्त का जवाब मुझे कब दोगी ?" और उसने उसका बाज़ू नर्मी से दबाया।

दीपा की आँखों में आँसू आ गये थे। वह चुप रही।

निहाल ने अपना मुँह उसके मुँह के पास करके कहा —"जब लड़कियाँ आँसू बहाती हैं, तो उनका असली मतलब यह होता है, कि कोई उन आँसूओं को अपने होठों से पी जाये। है न ? वैसे नमकीन तो दोनों होते हैं, मगर आँसुओं और समुन्दर के पानी में फ़र्क होता है। ....यह हम इंजीनियरों से पूछो।"

दीपा एकदम हँसने लगी। "तुम्हारे दिमाग़ पर तो इस वक़्त पानी सवार है।"

"अच्छा, बात को टालो मत। बहुत टाल चुकीं। बताओ, क्या सोचा ?....कहो न दीपा।....आज मैं तुमसे जवाब ले कर रहूँगा।"

दीपा ने सिर झुका लिया, और आहिस्ता से बोली—"जब कभी मैं इस मामले के बारे में सोचती हूँ—और वह कौन-सा वक़्त होता है, जब नहीं सोचती—तो मुझे महसूस होता है, कि यह तुम्हारी माँ के और तुम्हारे साथ बड़ी बेइन्साफ़ी होगी। तुम इंजीनियर हो, मुस्तक़िल मुलाज़मत है, अच्छी तनख्वाह है। अगर तुम चाहो, तो किसी बड़े घर

में तुम्हारी शादी हो सकती है। अमीर से अमीर लड़की तुम्हें मिल सकती है, दहेज़ में मकान और मोटर मिल सकती है। तुम्हारी माँ के लिये अब इस आख़ीर उम्र में तो कुछ सुख का सामान होना चाहिये। मैं एक प्राइमरी-टीचर हूँ। मैं उनके लिये ...।"

निहाल सिंह ने दीपा के मुँह पर हाथ रख दिया, और ग़ुस्से से बोला –"बस, बस। ...तुम्हारा जो जी चाहे करो, मगर यूँ मेरी माँ की बात न करो। अगर उन्हें पैसा प्यारा होता, अगर वह अपने उसूलों के मुक़ाबले में आराम को पसन्द करतीं, तो कर सकती थीं। तुम उन्हें क्या जानती हो? वह बड़ी महान् हैं।" फिर एकदम उसने अपना लहज़ा धीमा कर दिया। "मेरी माँ ख़ुद तुम्हारे यहाँ जाकर तुम्हें लायेंगी, अपने हाथों से तुम्हें दुल्हन बनायेंगी। वह तुम्हें इतना चाहेंगी, जितना शायद मुझे भी नहीं चाहतीं।....तुम्हें एक माँ मिलेगी, मुझे एक बाप। हम सब साथ रहेंगे, और अपनी ग़रीबी में भी बहुत ख़ुश रहेंगे। ....बस, तुम फ़ैसला करो, दीपा।"

दीपा चुप रही, आहिस्ता-आहिस्ता रोती रही।

"तो मैं माँ से कहूँ, कि मास्टर साहब के पास जायें?"

"नहीं," दीपा आहिस्ता से बोली।

निहाल ने उसे अपनी गोद में भींच लिया। डूबते हुए सूरज और बढ़ते हुए अँधेरे की स्याही-मायल नारंगी रोशनी में होंठ मिले।

फिर निहाल ने कहा—"इस पानी के उतरते ही मैं माँ से बात कर लूँगा। इस वक़्त तो मैं अपनी ड्यूटी वग़ैरा के सिलसिले में बहुत परेशान हूँ।....समझती हो, दीपा।"

"हाँ, हाँ।"

दोनों उठे। निहाल ने घड़ी देखी। "मुझे बॉस वग़ैरा से आठ बजे से पहले मिलना है। मगर अभी तो काफी वक़्त है।....आओ, थोड़े से हर-सिंगार चुनोगी?"

अगर सिकन्दर बाग़ के फाटक पर खड़ा होकर कोई देखता, तो

उसे बाग़ के कोने में सूर्यास्त की किरणों तले एक विशाल पेड़ के पास दो परछाईयाँ झुकी हुई, हरसिंगार के फूल चुनती नज़र आतीं—जैसे बहिश्त में आदम और हौवा।

८

नीता ने शोर की आवाज़ सुन कर खिड़की खोली। क्वार्टर के सामने रामी अपने कई अदद बच्चों में से एक को बड़े ज़ोरों से मार रही थी।

"अरे—अरे, रामी, यह क्या हो रहा है? छोड़, इसे—छोड़!"

रामी खिसिया गई, और बच्चों को एक धक्का देते हुये बोली—"दूर हो! काला मुँह कर!"

नीता को पहले तो हँसी आई, फिर ग़ुस्सा आने लगा। "रामी, तू ने हद कर दी। इतनी-सी बच्ची, उसको फुकनी से मार रही है।"

"देखिये बिटिया, अब तीनों की तीनों ज़िद कर रही हैं, कि एक-एक रुपये की चूड़ियाँ पहनेंगी। बताइये, फालतू के तीन रुपये हम कहाँ से लायें? इनके बाप ने कौन-सी गठरी कमा के रख दी है, कौन-सा लाट साहब है वह? बड़े आदमियों की बेटियों जैसी चूड़ियाँ पहनेंगी ये! मर जातीं चुड़ैलें! और इन मनिहारिन से कितनी बार कहा, कि भाई, हमारे घर के सामने लाके न रखा करो टोकरा। पर जब देखो, तब यहीं आकर पसर जायेगी....।"

"क्या चूड़ी वाली आई है?" नीता ने पूछा।

रामी का चेहरा ख़ुशी से दमकने लगा।

"हाँ, बीबी। आप पहनेंगी चूड़ी? इतनी अच्छी हैं, कि क्या

बतायें ? बानक तो इतने प्यारे हैं, कि देखते ही रहिये। बिल्कुल आप की नई वाली गुलाबी साड़ी से मैच करेंगे।" फिर चूड़ी वाली से ज़रा रोब के साथ मुख़ातिब हुई..."चलो-चलो, उधर ले कर चलो अपना टोकरा। हम आ रहे हैं। ....अरे, तुम चलो न कोठी के अन्दर। .... नहीं-नहीं, कुत्ता नहीं है। तुम चलो। हम अभी आये।"

ख़ूब मोटी-सी चौड़ी कमर और भारी कूल्हों वाली चूड़ी वाली ने 'बिस्मिल्लाह' कह कर टोकरा उठाया, और नीता की खिड़की के पास ही बने दरवाज़े से अन्दर बरामदे में जाकर बैठ गई। उटंगा ग़रारा, सफ़ेद मगर खूब मैला; धारीदार कपड़े की ऊँची-सी, मर्दाना काट की क़मीज़, जिसके नीचे से उसके कमरबन्द में बँधा हुआ कुंजियों का गुच्छा दिखाई दे रहा था; साड़ी में से फाड़कर बनाया हुआ दोपट्टा, नंगे पाँव। टोकरा नीचे ज़मीन पर रखती हुई बोली—"बेटा, हरी लाल चूड़ियाँ पहन—बरसात की बहार।"

नीता ने मुँह बना कर जवाब दिया...."ख़ाक बरसात की बहार! बेवक़्त का पानी बरस रहा है। सावन सारा सूखा गुज़र गया, और अब पानी की वह ले-दे हो रही है, कि भगवान बचाये!"

चूड़ीवाली बोली..."बीबी, हमारे निशातगंज में तो अभी भी तमाम पानी भर गया है। इधर तो कहिये, कि अभी अल्लाह का फ़ज़ल है।"

रामी बोली—"अच्छा-अच्छा, तुम चूड़ी दिखाओ। फ़ालतू बात की ज़रूरत नहीं।....हरे और गुलाबी बानक ले लीजिये, बिटिया! बड़े जँचेगे। और बिटिया को वह भी दिखाओ, कामदार, जो उधर रखी है। हाँ-हाँ वही लाल वाली। और वह जामुनी, जो इधर आड़ में रखी है। और जामुनी के अगल-बगल के लिये कड़े निकालो सुनहरी। ..उँह, यह वाले कड़े नहीं। चलीं यह गँवारू भैंसिया कड़े लगाने। बक्स खोल कर निकालो। कोई और नाज़ुक नहीं है?"

नीता ने हरी लाल चूड़ियाँ मिला के पहनीं, रामी को भी उसकी पसंद की चूड़ियाँ पहनवाईं, उसकी तीनों बच्चियों को पहनवाईं, और

बटुए में से दस का नोट निकाल कर चूड़ी वाली की तरफ बढ़ाया।

रामी बोली— 'पैसे वापस करो।"

"अरे, दस ही पैसे तो बचते हैं, बिटिया! टूटे नहीं हैं।"

"झूठ मत बोलो। सुबह से बेच रही हो, दोपहर होने को आई, और दस पैसे नहीं हैं?"

"क़सम खुदा की, नहीं हैं, बेटा। सुबह से कोठरी का सारा सामान सिर पर लाद-लाद कर दामाद के यहाँ पहुँचाया। फिर दोपहर में एक कप चाय पी के चले हैं। आपके हाथ की बोहनी की है।" और उसने फ़रियादी नज़रों से नीता की तरफ़ देखा।

"अच्छा, भई, रहने दो।....रामी, अब इनका टोकरा उठवा दे, भई।"

नीता ने खिड़की का पर्दा खींचा ही था कि उसकी कुछ सहेलियाँ बाहर की तरफ़ से होती हुई, खाने के कमरे से गुज़र कर, पिछले दरवाज़े से अन्दर आ गईं। और उनमें से एक ने पुकारा –"नीता! नीता कहाँ हो?"

नीता दौड़ी। "हाय शमीम! हाय रे, इत्ते दिनों बाद मिली! सच, मैं तुझे टेलीफोन करने वाली थी।....हाय रे, तू कहाँ थी शमीम?"

और सब तो नीता के पलँग और कुर्सी पर बैठ गईं, अख्तरी ने तख्त पर बैठ कर 'फ़िल्म-फ़ेयर' उठाया। उस पर शम्मी कपूर की तस्वीर थी। सुषमा ने पलंग पर से हाथ बढ़ाकर उसे छीना। "हाय, इतनी अच्छी तस्वीर! 'चाहे कोई मुझे जंगली कहे'।" और वह ज़ोर-ज़ोर से शम्मी कपूर का गाया एक गीत गाने लगी।

शमीम बोली—"हम को तो शम्मी अच्छा नहीं लगता। होंठ लटकाये—थूथन ऐसा। ऐक्टिंग भी बस दो-एक ही फ़िल्मों में अच्छी थी। अब तो बस उछल-कूद, इधर हाथ, उधर पैर।"

"बड़े भाई साहब की नक़ल करते हैं बेचारे," अख्तरी ने राय दी।

"ख़ैर, बड़े भाई की और आपकी बराबरी ! ...वह आर्टिस्ट हैं।" नीता ने कहा। वह राजकपूर की फ़ैन थी।

सुषमा बोली —"हाँ-हाँ, दुनिया में एक तुम आर्टिस्ट हो और दूसरा आर्टिस्ट राजकपूर ?"

"अच्छा, अब ज़रा सब लोग सीरियस हो जाओ," शमीम गर्दन को आगे बढ़ाके बोली—"दो काम हैं--एक तो यह कि अब के यूनिवर्सिटी के एलेक्शन में आप सब सुरेश को वोट देंगे, और उसके लिए कन्वैसिंग भी करेंगे।"

अख्तरी बोली—"भई, हम तो तुमसे से इतनी देर से कह रहे हैं, कि हमारे दोनों भाई सुरेश के ही लिये काम कर रहे हैं और करेंगे, मगर हम एलेक्शन में नहीं जायेंगे। वहाँ ऐसी बदतमीज़ी होगी, कि कुछ कहने की नहीं।....और —"

शमीम बोली—"नहीं, भई, कम-से-कम एलेक्शन में तो बदतमीज़ी नहीं होती। हम पिछले साल वोट दे चुके हैं।',

"अजी, बस वोट माँगने ही तक हाथ जोड़-जोड़ कर 'बहन जी, बहन जी' कहते हैं। जहाँ वोट देने निकलोगी, रिक्शे में पंकचर कर देंगे। ये लडके भी बिल्कुल नेताओं की तरह हो गये हैं, कि वोट माँगने के वक़्त खुशामद-दरामद, वायदे। और उसके बाद जो मुँह मोड़ा, तो पहचानते भी नहीं !" सुषमा ने टिप्पणी की।

नीता जोश में आकर बोली—"कैसे पंकचर कर देंगे ? कोई ज़बरदस्ती है ? हम भी शमीम की बात मानते हैं। ज़रूर हम लोगों को वोट देना चाहिये। और देंगे सुरेश ही को।"

"मगर हमने तो सुना है, कि रेखा कहती फिर रही थी, कि जो कोई रस्तोगी को वोट नहीं देगा, या उसके खिलाफ कन्वैसिंग करेगा, उसके पीछे अमर सिंह अपने गुंडे लगा देगा।"

अख्तरी ने साँस रोक ली। "हाय अल्लाह !....भई, हम इसीलिये कहते हैं, कि हम तो नहीं जायेंगे।"

नीता को और जोश आ गया। "बड़ी आई रेखा, लोगों को धमकी देने वाली! हम सब जानते हैं, कि उनके बाप यूनिवर्सिटी में रीडर हैं, तो वे इम्तहान में भले ही फ़र्स्ट-क्लास ले आयें, मगर वह हमसे ग़लत वोट नहीं डलवा सकतीं। हम नहीं देंगे जनसंघी को वोट। क्या करेंगी?... कर लें, जो कुछ करना हो। क्या लखनऊ यूनिवर्सिटी को भी वह बनारस यूनिवर्सिटी बना देना चाहती हैं? लखनऊ का भी नाम बदनाम करेगी?....देखेंगे।"

शमीम ख़ुश होकर बोली—"अच्छा तो फिर यह तै हो गया, कि हम सब सुरेश को वोट देंगे, और उसी की कनवैसिंग करेंगे।....और सब वोट देने जायेंगे ज़रूर।"

अख़्तरी फिर बोली—"यार, यह सब बड़ा चक्कर है। हमारे तो घर वाले बहुत बिगड़ेंगे, कि 'तुमको यूनिवर्सिटी पढ़ने के लिए भेजा है, कि पॉलिटिक्स बघारने? तुम क्यों गुंडों के मुँह लगीं?'....न, भैया, हमारी तो पढ़ाई पर आ बनेगी। हम को तो माफ़ करो।....चन्दा जितना कहो जमा कर देंगे। पर आयेंगे नहीं।"

नीता ने फ़ैसला करते हुए कहा—"देखो भई अख़्तरी, आयेंगे तो तेरे अच्छे भी, और वोट भी देंगे। और यह समझे रह, कि पहली क्लास से जो मेरी तेरी दोस्ती है, वह बिल्कुल ख़त्म हो जायेगी। सूरत नहीं देखेंगे कभी भी।"

शमीम बोली—"नहीं-नहीं, आयेगी।....आयेगी क्यों नहीं? ऐसा ही है, तो बुर्क़ा ओढ़ के आ जाना, यार।"

सब हँसने लगीं। अख़्तरी खिसिया गई।

"अच्छा—और दूसरा काम यह है, कि हम अपने उर्दू डिपार्टमेंट के लिये एक मैगज़ीन लाइब्रेरी बनाना चाह रहे हैं। तो उसके लिये कुछ पैसे जमा करो। और किसी ने बताया है, कि नवाब पुत्तन साहब ऐसे कामों के लिए चन्दा दे देते हैं। तुम लोगों के यहाँ तो उनका आना-जाना है। तो, भई, तुम इस वक़्त वहाँ हमारे साथ चलो। उनसे सिफ़ा-

रिश करो ज़रा।"

नीता बोली "हमारे यहाँ आने-जाने से क्या मतलब? वह तो मेरे चचा हैं। मगर, भई, मैंने कभी उनसे किसी काम के लिये चन्दा नहीं माँगा। पता नहीं, देंगे कि नहीं, और कितना देंगे।"

"तो क्या हुआ? चलो तो सही। कभी नहीं माँगा, तो अब माँगो। ....और थोड़ा-बहुत तो तुम्हारे कहने से दे ही देंगे।....क्या यह ज़रूरी है कि, जो काम क़भी न किया हो, वह कभी न करो।.... चलो तो। देखें, क्या होता है।"

"अच्छा।" नीता उठी, और सिंगार-मेज़ के क़रीब जाकर कंघी करते हुए बोली—"कैसे चलेंगे?"

अख़्तरी बोली—"सुषमा की कार जो है, जिसमें हम सब लद कर आये हैं। .... भई, शमीम का जवाब नहीं। बहुत बड़ी लीडर बनेगी कभी-न-कभी। ऐसा इन्सान को घेरती है बिलकुल माडर्न हिन्दुस्तानी नेता की तरह, कि ...।" फिर एकदम बोली—" अरे नीता, वह माडर्न पर याद आया, कि वह जो अरुणा थी—उसने केशवकुमार से शादी कर ली।"

नीता तैयार होने के लिये कंघी कर रही थी। उसका हाथ कंघी समेत हवा में उठा रह गया। "हाय रे, मुझे तो पता ही नहीं था। कौन केशव? ....वह जो दाढ़ी बढ़ाये घूमता है, तस्वीर बनाता है, अपने को पिकासो समझता है?"

"हाँ-हाँ, वही।.... सुना है, कि माँ-बाप ने केशव को घर से निकाल दिया है। वैसे उन दोनों ने एक कमरा ले लिया है म्यूज़ियम के पास कहीं वहीं रह रहे हैं।.... और सुनते हैं, कि केशव के दादा ने कहा कि 'हमारे ख़ानदान को कलंक लग गया। यह बहू आई है, जो न हमारे जात-पाँत की, न बिरादरी की, न गोत्र की।' और अरुणा बेचारी को बहुत गालियाँ दीं!"

"हाय रे, घर से क्यों निकाल दिया बेचारों को। अरुणा तो कितनी प्यारी है! हाय, बेचारी का अब क्या होगा?" नीता की

आँखों में आँसू आ गये ।

शमीम बोली "चलो-चलो, अब ज़्यादा भावुक बनने की ज़रूरत नहीं? होगा क्या? ठीक ही होगा। आखिर केशव को भी काम मिलता ही रहता है। और अरुणा तो हैंड-क्राफ्ट में काम कर ही रही है। भूखे तो मरेंगे नहीं।....चलो अब।"

"अच्छा, तो मैं चाची से पूछ लूँ ज़रा," नीता ने जूड़े में ज़नाज़न पिनें खोंसीं, और दूसरी साड़ी लपेटते हुए बोली।

सुषमा बोली—"वाह री लड़की! एम० ए० कर लिया, आर्टिस्ट बन गयी, आर्ट कॉलेज में स्कालरशिप पाती है, सोशलिस्ट बनती है, एलेक्शन लड़वाती है, और कहीं जायेगी, तो 'चाची से पूछ लूँ'?"

"तो, भई इसका सोशलिज़्म से क्या ताल्लुक़? ठीक ही करती है।" शमीम बोली।

मगर सुषमा छेड़ने के मूड में थी। "लो, यह उनसे भी बढ़कर इन्क़लाबी बोलीं। यार, तुम लोग चाहे जितनी तरक्क़ी कर जाओ, मगर हो न आख़िर मिडिल क्लास। चलोगी वही दक़ियानूसी चाल!"

चारों बाहर निकलीं। रामी के क्वार्टर के सामने से गुज़रते हुए नीता ने पुकार के कहा—"रामी, हम शमीम के साथ जा रहे हैं। दो घंटे बाद आयेंगे। चाची को बता देना। हम उनके कमरे में गये थे। वह हैं नहीं। शायद बाज़ार गयी हैं।"

"हाँ-हाँ, बीबी। ....बेगम हबीबुल्ला आई थीं। वह अपने साथ ले गई हैं। उनकी बेटी की शादी है न। कुछ खरीदारी करनी थी।" और फिर रामी, जो पेटीकोट और ब्लाउज़ पहने आटा गूँथ रही थी, गीले हाथ पेटीकोट से पोंछती हुई अपनी साड़ी पलँग पर से उठाकर दौड़ी—"हम चलें, बिटिया?"

"अरे, हम तुम्हें बुला कब रहे हैं, भई? चाची से कह देना, कि हम शमीम बिटिया के साथ गये हैं, वरना वह परेशान होंगी। कहना, दो घंटे बाद आयेंगे—बस।"

"बेटा, हम चलते हैं आप के साथ। अभी आते हैं।"

"ओफ्फ़ोह! रामी, आज तेरा दिमाग़ सही नहीं है क्या? हम तुझे नहीं बुला रहे हैं, चाची से कहने को कह रहे हैं।"

"नहीं, बीवी, अगर आप की वापसी में देर हो तो हम साथ चलें। मन्नू को ले चलते हैं।" उसने जल्दी से अपनी छोटी-सी सोती हुई बच्ची को गोद में उठाया, और जूती पहनी।

सुषमा चिढ़ के बोली— "ओ हो, भई नीता, यह तुम्हारी रामी तो बड़े ग़ज़ब की औरत है। मान न मान, मैं तेरा मेहमान!"

"बल्कि मैं तेरा चौकीदार—"

सब हँसती हुई, फाटक पर खड़ी कार में बैठ गयीं।

६

बड़े इंजीनियर साहब के दफ्तर का काफ़ी फैला हुआ अहाता कुछ ऐसा लगता था, कि जैसे उसमें हर चीज़ ऐसी थी, जिसका कोई पूछने वाला न था—बन गई, तो कोई देखने वाला नहीं, और बिगड़ गई तो भी कोई देखने वाला नहीं! यूकिलिप्टस के पेड़ अलबत्ता अपनी जगह खूबसूरत थे; वरना तो कहीं जंगली झाड़ियाँ थीं, कहीं लम्बी-लम्बी घास, जो बाज़-बाज़ जगह पगडंडियाँ बन कर ख़त्म हो गयी थीं कहीं हरी थीं, कहीं पीली, कहीं बिलकुल ग़ायब। दफ्तर की सीढ़ियों पर कुछ गमले ज़रूर रखे थे, मगर उनमें भी यूँ ही से पौधे लगे थे। सीढ़ियों के बाद लम्बा-सा बरामदा था। बरामदे के कई दर थे। और हर दर पर जो चिक लगी थी, वह अपना एक-एक नमूना रखती थीं—कोई

ऊँची बंधी थी, कोई नीची, किसी का झुकाव दाहिनी तरफ़ था, किसी का बायीं तरफ़, किसी में सुतली लटक रही थी, किसी की निवाड़ चिथड़ा हो गई थी, और तक़रीबन सब ही में चिड़ियों ने घोंसले बना रखे थे, जो चक्कर काटती, चूं-चूं करती, सारे बरामदे में फुदकती फिरती थीं और तमाम दरवाज़ों और खिड़कियों पर गन्दगी करती फिर रही थीं।

बरसाती में एक बड़ी-सी मोटर खड़ी थी, जिसके पहिये तमाम कीचड़ से भरे थे। ऊपर भी कीचड़ के छीटें और गुलकारियाँ थीं। ऐसा लगता था, कि कीचड़ से गुज़रती, लम्बा सफ़र करती, अभी कहीं से वापस आई है।

ज़रा दूर हाते के एक कोने में दो-चार क्वार्टर थे। वहाँ कुछ औरतें और नंग-धड़ंग बच्चे घूमते या झलंगों पर बैठे दिखाई दे रहे थे। दो पेड़ों के नीचे बकरियाँ बँधी थीं। और दोनों पेड़ों के बीच अलगनी पर बहुत-से रंग-बिरंगे मैले-कुचैले चिथड़े सूख रहे थे। पास ही अमरूद के एक छोटे-से पेड़ में तोते का पिंजड़ा लटक रहा था। उसी के पास एक छोटी-सी लड़की सामने ढेरों बर्तन रखे, उनको आहिस्ता-आहिस्ता माँज रही थी।

क्वार्टरों के पास ही एक छप्पर-सा था, जिसमें दो-तीन बेंचे पड़ी थीं। ईंटों का एक चबूतरा-सा बना कर, उस पर पत्थर के कोयले की एक अँगीठी रखी थी, जिस पर काले रंग की टीन की केतली उबल रही थी। उसी चबूतरे पर एक तरफ़ एक जालीदार आलमारी रखी थी, जिसमें एक पाये के बजाय एक छोटा-सा टीन का डिब्बा लगा था। आलमारी में मैले-मैले बिस्कुट, एक मर्तबान में दाल-मोठ और कुछ और खाने-पीने का सामान था। आलमारी के ऊपर चीनी की मोटी-मोटी भद्दी फूलदार प्यालियाँ और तश्तरियाँ रखी थीं।

निहालसिंह, बोस और इम्तेयाज़ फाटक के पास ज़रा-सा रुके। बोस कहने लगा—"यार, सोच लो। अभी भी वक़्त है, वापस भाग चलें।"

इम्तेयाज़ गम्भीर हो गया।—"यार, तू बड़ा बोदा बंगाली मालूम होता है। इतनी दूर इसीलिये आये हैं, कि वापस भाग चलें?"

बोस ने कहा—"बंगाली तो बोदा नहीं होता। कहो, तो बम फेंक दें। और फेंकता ही था, और आइन्दा भी फेंकेगा। मगर यह बताओ, कि इन अफ़सरों से कहने से कुछ फ़ायदा होगा भी?"

दोनों निहालसिंह की तरफ देखने लगे।

वह चुपचाप आगे बड़ा, और फाटक की कुंडी खोलते हुए बोला—"हो या न हो, मगर हम लोगों को जो मालूम है, वह इन लोगों को बताना ज़रूरी है न। काग़ज सब ठीक हैं न?"

"हाँ, हाँ," बोस ने अपने हाथ में थामी हुई फाइलों की तरफ़ इशारा किया। तीनों चलते हुए बरसाती तक पहुँच गये।

इम्तेयाज़ ने आगे बढ़ते हुए, मोटर को हाथ लगाया। "यह अभी कहीं से आई है। देखो, इस पर तमाम कीचड़ लगा है। यह बड़े इंजीनियर साहब कहीं दौरे पर गये थे।"

"आओ, आओ। छोड़ो इसे," कहता हुआ, निहालसिंह बरामदे में चढ़ा, और एक कमरे का जालीदार दरवाज़ा खोलता हुआ बोला—"मैं आ सकता हूँ?"

कोई जवाब न आने पर वह अन्दर चला गया। चार मेज़ें थीं। सब पर क़लमदान थे, दवातें सूखी थीं। होल्डर भी थे, मगर उनमें निब नहीं थी। चारों तरफ़ आलमारियों में फाइलें ठुँसी थीं। मेज़ों पर काग़ज के अम्बार थे, जिन पर मिट्टी पड़ी थी। एक मेज़ पर एक टाइपराइटर खुला पड़ा था। सब रोशनियाँ जल रही थीं। सब पंखे चल रहे थे। मगर कमरे में कोई नहीं था।

निहालसिंह कमरे का एक चक्कर काट कर बाहर निकला ही था, कि बरामदे के दूसरे कोने से एक चपरासी आहिस्ता-आहिस्ता चप्पल घसीटता हुआ इधर मुड़ा। घिसा हुआ खाकी कपड़े का कोट, जिसके बटन टूटे हुए थे, और अन्दर से भूरे रंग की मैली क़मीज़ झाँक रही

थी। मारकीन की मैली धोती, लाल चारखानेदार अँगोछे से मुँह पोंछता हुआ, वह उन तीनों के पास से गुज़र गया, और निहालसिंह पर एक अन्यमनस्कता की नज़र डालता हुआ, सीढ़ियाँ उतरने लगा।

निहालसिंह उसके पीछे लपका। "सुनो, भई।"

उसने मुड़ कर, फिर एक नज़र निहालसिंह पर डाली, एक जम्हाई ली, और बोला "रुके रहिये। अबहीं आवत हैं।" फिर वह सी ढ़याँ उतर कर थोड़ी दूर गया, और खड़ा होकर चिल्लाने लगा –"बड़े बाबू ! ए बड़े बाबू ! ए बड़े बाबू साहब !"

छप्पर के नीचे से एक खाँसता हुआ ढाँचा झुक कर बरामद हुआ। और फिर एक काफ़ी लम्बा मगर बेहद दुबला आदमी दिखाई देने लगा, जो गहरे नीले रंग की ढीली-ढाली पतलून और कत्थई रंग की बुश्शर्ट पहने था। पतलून के पाँयचों में फूँसरे थे। बुश्शर्ट नई और रेडीमेड ख़रीदी हुई लगती थी। मोटे-मोटे शीशों वाली ऐनक से उनकी आँखें चपरासी को घूर रहीं थीं। बिस्कुटों वाली आलमारी से उसने अपनी फाइल उठाई, और कैनवैस के सफ़ेद जूते घसीटता, आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ चपरासी के क़रीब आकर बोला —"क्यूँ, चीखे जा रहा है, वे ? कौन-सा घी का घड़ा लुढ़क गया ? एक प्याली चाय पीना दूभर कर दिया। अभी तो गया था।" फिर यकायक उसकी नज़र कीचड़-भरी मोटर पर पड़ी। –"ऐं ! क्या साहब आ गये ?"

"अउर का ? अउर हम काहे गोहरावत हैं ?....गुप्ता बाबू कहिन हैं, कि बड़े बाबू का जल्दी बुला लाओ। तउन टी० ए० बिल समझ लेंय। फिर साहब का अबहिन कहूँ अउर जाय का है।"

बड़े बाबू ने अपनी रफ़्तार तेज़ की। सीढ़ियों पर चढ़े, तो निहाल से मुठभेड़ हुई। वह एक हाथ आगे बढ़ा कर बोला—"नमस्ते ! माफ़ कीजिये, मैं कोई दो महीने पहले यहाँ आया था, तो कोई और बड़े बाबू थे। इसलिये मैं आप को पहचान नहीं सका। मैं बड़े साहब से मिलना चाहता हूँ। बहुत अर्जेन्ट काम है।"

बड़े बाबू ने उससे हाथ मिलाने के बजाय उसे ऊपर से नीचे तक घूरा। "आप हैं कौन साहब ?"

इम्तेयाज़ झुँझला कर आगे बढ़ा। "साहब, हम लोग बड़े ज़रूरी काम से आये हैं। थोड़ी-सी देर से भी बहुत-सा नुक़सान होने का डर है। आप हमें फ़ौरन बड़े साहब से मिलवा दीजिये। बाढ़ के बारे में कुछ कहना है।"

बड़े बाबू ने उसको लापरवाही के साथ ऊपर से नीचे तक देखा। "तो, साहबज़ादे, आप क्या समझते हैं, कि हम लोग कोई ज़रूरी काम नहीं कर रहे हैं ?....अरे, बाढ़ की बात तो सभी कर रहे हैं।....आप क्या कोई निराली बात करेंगे ?....आप लोग हैं कौन ?"

बोस जल गया। "हम लोग तीनों इंजीनियर हैं।"

चपरासी पास ही खड़ा इन लोगों को घूर रहा था। उसने दोहराया "इंजीनियर !"

बड़े बाबू का भी लहज़ा कुछ बदल गया। "इंजीनियर ! अच्छा ! ....अच्छी बात है। तो इधर से आइये !...मगर बड़े साहब तो अभी आये हैं, और अभी दो बजे फिर जा रहे हैं। ऐग्रीकल्चर के मंत्री साहब हेलीकाप्टर से पानी का मुआयना करेंगे न। तो उनके साथ जाना है उनको। और अपना टी० ए० बिल भी बनवाना है। तो फिर आप लोगों से मिलने की फ़ुरसत कहाँ मिलेगी उनको ?" वह अपने सफ़ेद जूते घसीटते बराबर चलते जा रहे थे।

निहालसिंह ने भाँप लिया, कि इम्तेयाज़ और बोस का गुस्सा बढ़ता जा रहा है।

उसने एक हाथ पीछे करके उनको रोका, और सहजता से बोला—"बड़े बाबू, आप उनको सिर्फ़ हमारे आने की इत्तला दे दीजिये। कहिये, कि गऊघाट पर जिन इंजीनियरों की ड्यूटी लगी है, वे आये हैं। बस। ....अगर उनको फ़ुरसत न होगी, तो हम यहीं खड़े रहेंगे। जब वह सवार होने लगेंगे, तब मिल लेंगे।"

बड़े बाबू चलते हुए बोले—"नहीं, साहब खड़े क्यूँ रहियेगा? चलिये, बैठ जाइये।....आइये, इत्तला कर दूँगा।"

इम्तेयाज़ बड़बड़ाया—"न जाने तुम इतनी खुशामद क्यूँ करते हो, यार?....आखिर क्या हमारा ज़ाती काम है। फटे बाँध, डूबें सब! हम लोगों के घर नहीं डूबेंगे। अमीनाबाद में हैं।....कहते हैं, 'इत्तला कर दूँगा!' जैसे हमारे ऊपर एहसान करेंगे। जैसे हमने इनका कर्ज़ा खाया है!"

निहालसिंह गम्भीर हो गया। "क्या कह रहे हो, इम्तेयाज़? यह सैकड़ों इन्सानों के जान-माल का सवाल है। हमारे सब दफ्तरों का यही हाल है, दोस्त। और इन्हीं हालात से लड़ते हुए हमें अपना फ़र्ज अदा करना है। झुंझलाहट से कैसे काम चलेगा?"

बोस आहिस्ता से बोला—"कुछ भी कहो, यार, जी चाहता है, कि इस दफ्तर को इन अफसरों समेत डायनेमाइट लगा कर उड़ा दूँ। हद है! लोग डूब रहे हैं, और इनको अपने टी० ए० की पड़ी है!"

निहाल उसी तरह गम्भीर रहा। "उसका भी वक़्त आयेगा, बोस।....डायनेमाइट तो इस दफ्तर को नहीं, इस निज़ाम को लगानी पड़ेगी। यह दफ्तर तो हमारा है, जनता का है। हम अपनी इमारतें तोड़ेंगे नहीं, बल्कि छीन कर उनके असली हक़दारों को देंगे, जिनके हाथों ने इन्हें बनाया है।....अच्छा, आओ, इस वक़्त जिस काम से आये हैं, उस पर ध्यान दो।"

जब तीनों इधर वाले बरामदे में आये, तो तीनों ने दफ्तर का पिछला हिस्सा देखा। उधर ही बड़े साहब रहते भी थे।

इस हिस्से में खूब सफ़ाई थी। एक छोटा-सा लॉन था जिसकी दूब बराबर और मखमली फर्श की तरह थी। उसके चारों तरफ काँटेदार तार की बाड़ थी। लान पर तीन-चार आराम कुर्सियाँ पड़ी थीं। एक तरफ़ को कई छोटे-छोटे दरख़्त थे, जिनकी छाँह में एक रंग-बिरंगी पट्टियों वाली बड़ी-सी छतरी गड़ी हुई थी। दो पटरियों के दरमियान

छाँव में एक अलगनी बँधी थी। और एक मोटी-सी गोरे रंग की लड़की रेशमी साड़ी बाँधे, कान गले और हाथों में सोने के जेवर पहने दो हैंगरों पर नायलॉन की बुश्शर्टें लटका कर उन्हें अलगनी पर टाँग रही थी।

बोस ने उधर देखा और कहने लगा—"यार निहाल, तू अन्दर जाके इन्जीनियर साहब से मिल, मैं तो यहीं लॉन में आरामकुर्सी पर बैठता हूँ,"—और उसने इम्तेयाज़ को आँख मारी। इतने में निहालसिंह ने कमरे की चिक उठाई और अन्दर चला गया। उसके पीछे इम्तेयाज़ और उसके पीछे कन्धे उचकाते हुए बोस कमरे में दाखिल हो गये।

इस कमरे का भी वही आलम था जो पहले वाले का था। अलबत्ता यह उससे बड़ा था और यहाँ छः मेजों पर छः आदमी थे—दो मेज़ों पर टाइप-राइटर चल रहे थे, बड़े बाबू अन्दर घुसते ही जैसे इन तीनों को भूल गये, बोले—"गुप्ता बाबू, वह टी०ए० फारम कहाँ हैं?" सबसे पिछली वाली मेज़ के टाइप-राइटर पर से एक नौजवान लड़के ने सिर उठाया—बड़े बाबू के पीछे खड़े इन तीनों नौजवान इन्जीनियरों को एक नज़र देखा और फिर टाइप करने लगा—दूसरी मेज पर से गुप्ता बाबू उठे, खड़े हुए, दराज़ें एक-एक करके खोलीं, मेज़ पर रखी हुई ट्रे के काग़जों में पंजे मारे, मुड़-मुड़ कर नौजवान की मेज़ की तरफ़ निगाहें दौड़ाईं, आलमारी के दो खानों के काग़ज उलट-पुलट किये—फिर कुर्सी पर बैठ गये—सबसे नीचे वाली दराज़ खींची, उसमें से निस्वार की डिबिया निकाल कर दोनों नथुनों में खींचते हुए बोले, "यहाँ तो टी०ए० फारम है नहीं, बड़े बाबू। आप ज़रा अपनी मेज़ पर देखियेगा, वाहदी साहब।"

कोने की मेज़ से काग़जों पर झुका हुआ एक सफेद सिर उठा, उसकी मूंछे काली थीं, मुँह में पान पीक समेत भरा था, पीक को दबा के बोले, "अजी मेरा नाम न लीजियेगा—निकालते हैं काग़ज आप, बनाते हैं आप टी०ए० और" उन्होंने मेज़ के नीचे रखे उगालदान में पीक थूकी।

तीनों नौजवान इन्जीनियर दरवाज़े से लगे खड़े थे ।

"तो वह कहीं और रख गया होगा रामभरोसे । वाहिदी साहब, क्या आप रात रमी में हार गये, कि क्रास वर्ड में तीन से ज़्यादा ग़लतियाँ निकल आईं या भाभी से झगड़ा हुआ जो आपका मूड इतना खराब है ...ही ही ही ।"

बड़े बाबू का लम्बा सूखा ढाँचा हँसी से लड़खड़ाने लगा—फिर वह एकदम गरजे, "रामभरोसे--अबे, ओ राम भरोसे !"

चिक के पीछे से एक छोटा-सा सिर झाँका । उलझे-उलझे बाल, सूखा जिस्म, पीला चेहरा, दुबले-दुबले हाथ, अन्दर को धँसी हुई चमकती आँखें, मैली चीथड़ा कमीज़, खाकी नेकर जो इतना लम्बा था कि पिंडलियों तक पहुँच रहा था ।

"जी, सरकार ।"

"अबे, तू यहाँ क्या कर रहा है ?" बड़े बाबू ने उसे मोटे शीशों वाली ऐनक में से घूरा ।

"बाबू गये हैं बड़े साहब के दौरे के वास्ते सब्ज़ी लेने । कह गये रहें, कि यहीं बैठो । कोई काम होय, तऊन कर दिह्यो ।"

तीनों इंजीनियर उसी तरह दरवाज़े में खड़े रहे ।

"लीजिये, वह खिसक गये । अब गये बारह बजे तक ।" बड़े बाबू खिसिया कर बोले, और वह फिर अपनी दराज़ टटोलने लगे, और फिर एकदम बोले—"लो, भई, यह रखे हैं टी०ए० फारम ।"

अपनी मेज़ की दराजें ढूँढ़ कर, जो उन्होंने सर घुमाया, तो उन तीनों पर नज़र पड़ी । "ओपफोह, आप लोग भी तो खड़े हैं । अब बताइये, साहब, कि मैं क्या-क्या करूँ ?" फिर सबसे निचली दराज़ खोल कर बन्द करते हुए बोले—"और, वह कहाँ गया....वह रेत की बोरियों का जो सैंक्शन उस दिन कमेटी ने किया था । डालीगंज के लिये ?.... अरे भई, कितनी बोरियों का सैंक्शन हुआ था ?"

दूर से वाहिदी साहब बोले—"मेरा ख्याल है, पाँच हज़ार

बोरियाँ।"

"ऐं! ....हाँ-हाँ, पाँच हज़ार ही तो। मगर वह तो—भई, बड़े साहब के दस्तखत भी तो उस पर लेने हैं, वरना फिनांस से वह मंज़ूर कैसे होगा?"

कोने में बैठे नौजवान क्लर्क ने अपना टाइप-राइटर रोक दिया, और उसमें से एक काग़ज निकाल कर जल्दी-जल्दी चलता हुआ बड़े बाबू के पास आया। "लीजिये, यह काग़ज तो आप ने मुझे दिया था न, कि इसकी चार कापी बनेगीं। सो वह मैंने बना दी हैं। आप तो भूल गये।"

और वह तीनों नौजवान इंजीनियरों को देख कर दोस्ताना अन्दाज़ में मुस्कराया। "आप लोग कैसे आये हैं?"

"हम लोग इंजीनियर हैं। हमारा ख़्याल है, कि सिकन्दर बाग़ का बाँध टूटने का ख़तरा है। सो उसी के लिये हम बड़े इंजीनियर साहब से मिलना चाहते हैं।"

इतने में चिक के बाहर एक नाटे क़द का मोटा-सा आदमी, खिचड़ी बाल वाला, उम्दा सूट पहने, सिगार पीता हुआ, आहिस्ता-आहिस्ता बरामदे से गुज़रा, और दूसरी तरफ को मुड़ गया।

नौजवान क्लर्क जल्दी से बोला—"देखिये, बड़े साहब तो वह जा रहे हैं अपने दफ्तर में। ....आइये, मैं आप लोगों को ले चलूँ।"

और वह चिक उठाने के लिये आगे बढ़ा ही था, कि बड़े बाबू ने उसके हाथ से क़ाग़ज़ झपट लिये, और बोले—"आनन्द बाबू, आप अभी एक ही महीने से आये हैं। आपको इस दफ्तर के क़ायदे मालूम नहीं। पहले सरकारी काम हो ले, तब कोई और बात होगी। ....आप जाइये अपनी जगह।"

आनन्द शर्मिन्दा होकर वापस अपनी मेज़ पर चला गया।

बड़े बाबू ने काग़जात समेटे, चिक उठाई, और हड़बड़ाने लगे—"नये-नये आये हैं। माँ-बाप के सर खाते हैं। आपको बीस रुपया पाकेट

मनी। इसी लिये इतनी फुरती दिखाते हैं। ....मैं भूल गया। अरे, आप भी दस-पन्द्रह बरस गर्दन झुका के कमरतोड़ काम करेंगे, तो आप भी यह चौकड़ी भूल जायेंगे। ...आइये, साहब, आप लोग मेरे साथ।.... उँह !"

बड़े साहब का कमरा खूब ठाठदार था। एयर-कंडिशनर लगा हुआ जो इस वक्त बन्द था, क्योंकि अब अक्टूबर शुरू हो चुका था, और उसकी ज़रूरत नहीं थी। बीच में बड़ी मेज़ पर बनात जड़ी थी। आस-पास प्लास्टिक से बुनी हुई, चमकती हुई कुर्सियाँ। एक कोने में एक सोफा। उसके पास दो आरामकुर्सियाँ। कई छोटी मेज़ें। सब पर शीशे या पीतल की राखदानियाँ। दीवार पर ज़िले का एक बड़ा-सा नक्शा। कमरे भर में यह नक्शा ही एक ऐसी चीज़ थी, जिस पर गर्द जमी थी। बाकी सब-कुछ चमक रहा था।

बड़ी मेज़ के पास घूमने वाली कुर्सी पर बड़े साहब बैठे अपने सामने रखे हुए एक छोटे-से काग़ज पर कुछ नोट कर रहे थे।

बड़े बाबू ने चिक उठाई, दबे पाँव साहब के पीछे से जाकर उनके पास मेज़ पर कुछ काग़ज रखे, फिर घूम कर सामने से आकर सलाम किया। बड़े साहब ने सर उठाये बग़ैर पूछा—"वह टी०ए० फार्म ले आये हैं आप ?"

निहाल सिंह और उनके दोनों साथी भी अन्दर आ गये थे, और बड़े साहब के पीछे दरवाजे के पास खड़े थे।

"यस, सर। टी०ए० फार्म ले आया हूँ।"

"तो ज़रा नोट कीजिये।"

बड़े बाबू तीनों इंजीनियरों को भूल गये। मेज़ के पास एक कुर्सी खींची, और बैठ गये।

बड़े इंजीनियर साहब कहने लगे—"फ़लाँ जगह से फ़लाँ जगह, इतना रुपया, फ़लाँ जगह से फ़लाँ जगह इतना रुपया। ...रात को डाक बंगले में डिनर। ....सुबह को फलाँ जगह पर ब्रेकफास्ट।....देखिये,

माईलेज भी लिखते जाइयेगा।"

"जी हाँ, लिख रहा हूँ।"

"लंच नहीं मिल सका। शहर में जाकर टीन खरीदने पड़े, क्योंकि छोटे-से शहर में जो दो-एक रेस्तराँ थे, उनका खाना महफ़ूज़ नहीं था। फिर फलाँ जगह। माइलेज़ इतना। उसका इतना रुपया," यकायक उनकी नज़र इन तीनों पर पड़ी। त्योंरी पर बल डालकर बड़े बाबू से बोले —"ये लोग कौन हैं?"

इम्तेयाज़ आगे बढ़ा। "हम लोग इंजीनियर हैं।" फिर उसने जल्दी जल्दी अपनी डिगरियाँ और अपने ओहदे बताये, और कहने लगा— "हम लोग कई दिन से सिकन्दर बाग़ वाले बाँध का मुआयना कर रहे हैं। और...."

अब निहाल सिंह आगे बढ़ा। "और हम लोग इस नतीजे पर पहुँचे हैं, कि अगर पानी इसी तरह बढ़ता रहा, और पानी का करेंट ऐसा ही तेज़ रहा, तो यह बाँध जवाब दे जायेगा, और बटलरगंज का तमाम इलाक़ा कम-से-कम पन्द्रह फीट पानी से भर जायेगा। और जब बाँध टूटेगा, तो पानी इतनी तेज़ी से आयेगा...."

बड़े साहब व्यंग्य से मुस्कराये। "शायद मुझे यह मालूम है, कि जब बाढ़ से कोई बाँध टूटता है तो पानी कितनी तेज़ी से आता है।.... मगर आप लोग कहना क्या चाहते हैं....मैं बाँध को बनवाना शुरू कर दूं?"

बोस का मुँह गुस्से के मारे लाल हो गया। "यह तो हम नहीं कहना चाहते। लेकिन आप कम-से-कम उस इलाक़े के लोगों को इस ख़तरे से ख़बरदार कर सकते हैं।....हमारे ख़्याल में आज यह ऐलान शुरू हो जाना चाहिये, ताकि लोग अपना सामान उठा लें। कम-से-कम मकानों की निचली मंज़िलें खाली कर दी जायें। बीमारों, औरतों, बच्चों और बूढ़ों को हटा दिया जाये।...."

इम्तेयाज़ बोला —"अगर बाँध नहीं टूटता, तो पाँच-छः दिन बाद

जब पानी कम होना शुरू हो जायेगा, तब लोगों से कहा जा सकता है, कि वापस आ जायें। लेकिन अगर उनको किसी क़िस्म की आगाही न दी गई, और बाँध टूट गया, तो बड़ी सख़्त तबाही होगी, और कोई नही जान सकता कि जान-माल का कितना नुक़सान होगा। आप इस बात पर ग़ौर कीजिये। यह बड़ा नाज़ुक मामला है।"

बड़े साहब हँसने लगे। "आप लोग बच्चे हैं। ...औवल तो बाँध टूटेगा नहीं। यह अँग्रेजों का बनवाया हुआ बाँध है, आप लोगों का बनवाया हुआ नहीं है, कि आज बना कल लेट गया। सीमेंट की जगह बालू, बालू की जगह मिट्टी लगा दी गई।....और फिर यह, कि मुझे यह ऐलान करने की अथॉरिटी क्या है?"

बोस ने पोर्टफोलियो आगे बढ़ाया, और उसे खोलता हुआ बोला—"हम लोगों ने मुकम्मल जाँच करके रिपोर्ट बनाई है, नक्शे तैयार किये हैं, और अपने इस ख्याल की तमाम वजहें बड़ी तफसील से लिखी हैं।"

बड़े साहब ने हाथ उठाकर उसे रोक दिया। "यह तो टेकनीकल बात हुई न। चलिये, मैं देख लूंगा। लेकिन ऐलान तो गवर्नमेन्ट करेगी न।....या आप और मैं मिलकर डुग्गी पीटने लगेंगे?"

"मगर आप तो इस सिलसिले में सबसे बड़ा ओहदा रखते हैं। अगर आप कहेंगे कि ठीक है, तो गवर्नमेन्ट भी इस पर ग़ौर करेगी।.... आपकी भी तो कुछ अथॉरिटी है।" निहालसिंह ने कहा।

"मैं इस तरह आप लोगों के लाये हुये किसी ग़ैरसरकारी काग़ज पर अपनी अथॉरिटी कैसे दे दूंगा। अगर आप लोगों को यह काग़ज मुझे देना ही है, तो अपने डिपार्टमेन्ट के हेड से कहिये, थ्रू प्रापर चैनल कीजिये।....या हमारी वज़ारत में जाइये। अगर वहाँ से कुछ बात होगी तो मैं ग़ौर कर सकता हूँ।"

इम्तेयाज़ का जी चाहा, कि उनकी घूमने वाली कुर्सी को पकड़कर इस ज़ोर से घुमाये, कि वह औंधे मुँह ज़मीन पर जा पड़ें। बोस का

एक रंग आता था, एक जाता था। निहालसिंह ने हिम्मत करके फिर बात शुरू की—"देखिये, अगर आप इस पर ग़ौर नहीं कर सकते, तो कम-से-कम दस मिनट के लिये हमारे साथ चले चलिये। अभी तो साढ़े ग्यारह भी नहीं बजे हैं, और आपको दो बजे जाना है। आप एक नज़र भी उस जगह को देख लेंगे, और फिर पाँच मिनट हमारी रिपोर्ट को, तो आपको इस खतरे का पूरा अन्दाजा हो जायेगा।"

"जनाब, मुझे अभी बहुत काम है। दो-तीन दिन में यहाँ ढेरों काग़ज इकट्ठे हो गये हैं। सब को निबटाना है। फिर अमौसी जाना है। और अभी तो मेरी मोटर की सफ़ाई हो रही है। मैं जाऊँगा कैसे ?"

"मगर यह तो बड़ी परेशानी की बात है। लोगों को किसी-न-किसी तरह मालूम तो होना चाहिये, कि उनके सिर पर कितना बड़ा खतरा मँडरा रहा है।" अब निहालसिंह की आवाज़ में भी गुस्सा था।

इंजीनियर साहब अपनी कुर्सी से उठे, और निहालसिंह के कन्धे पर हाथ रखा। वह भाँप गये थे, कि इस दल का नेता वही था। उन्होंने बड़े बाबू को बाहर जाने का इशारा किया। फिर समझाने वाले लहज़े में बोले—"यंग पीपुल, तुम लोगों को अभी तजुरबा नहीं है....न दुनिया का, और न अपने मुल्क के हालात का। यह सब इधर-उधर कहते फिरोगे, तो देख लेना कि आखीर में तुम लोग खुद ही मुसीबत में फँस जाओगे।"

निहालसिंह हैरान रह गया। "क्यों ? कैसे ?"

"यूं कि आजकल नौजवानों की जो हालत है, उसकी वजह से किसी को उनका भरोसा तो रह नहीं गया है। बसों पर पत्थर तुम लोग फेंको डाकखाने तुम जलाओ, लेबोरेटरियों के शीशे तुम तोड़ो, इम्तहानों में उस्तादों को खंजर तुम दिखाओ।....फिर अगर कोई यह अफ़वाह फैला दे, कि कुछ नौजवान इंजीनियरों ने मिल कर बाँध को तोड़ दिया, तो क्या लोगों को यक़ीन नहीं आ जायेगा ? अभी पूरा एक हफ्ता भी नहीं

गुज़रा, कि अखबारों में आया था, कि दो नौजवानों ने एक ब्लैक मार्केटियर को पकड़वा दिया था। अगले दिन एक की बहिन उठा ली गई, और दूसरा काठ के पुल के नीचे नीममुर्दा हालत में पाया गया। और पुलिस कुछ पता नहीं लगा सकी। और पुलिस पता लगाये भी क्यूं ? अब जब सेर भर का अनाज बिक रहा है, पुलिस वाले भी तो इन्सान हैं, उन्हें भी पेट भरना है।....वैसे तुम लोगों के अपने घर कहाँ हैं ?"

इम्तेयाज़ बिफर पड़ा —"तो आप का मतलब यह है, कि हम अपने घरवालों को होशियार करें, और बाक़ी सब चाहे डूबें, उससे हमें कोई मतलब न रखना चाहिये ?"

"गुस्सा न करो, नौजवान। गाँधीजी ने हमेशा गुस्से के खिलाफ़ प्रचार किया था।....मैंने तो तुम लोगों के फ़ायदे की बात कही है। इस वक़्त जो हालत है, उसमें यही मुनासिब है, कि चुपके बैठे रहो।... वैसे तुम लोगों की मर्ज़ी। भेजना है, तो कागज़ थ्रू प्रापर चैनल भेज दो।"

उन्होंने अपनी मेज़ पर से काग़ज समेटे, और आवाज़ दी - "रामभरोसे !"

रामभरोसे एक बड़ा थैला लिये दाख़िल हुआ। थैले में सब्जी भरी थी। "देखो, बड़े बाबू को भेज दो।" और फिर वह टेलीफोन उठा कर अपने मंत्रालय का नम्बर मिलाने लगे।

तीनों इंजीनियर बड़े साहब को सलाम करके बाहर निकल आए। जब वे लोग चिक गिरा रहे थे, तो बड़े साहब की आवाज़ आ रही थी—"देहली गये हैं ? तो टूअर कैंसिल हो जायेगा ?....नहीं ?.... अच्छा, तो डिप्टी, मिनिस्टर चलेंगे ? ठीक है।....मैं अमौसी पहुँच जाऊँगा।"

१०

बेगम मतीन साड़ी का पल्लू सँभालती ड्राइंग-रूम का जालीदार दरवाज़ा खोल कर, बाहर के बरामदे की तरफ़ निकलीं, इधर-उधर देखा, फिर कुछ झुँझलाकर आवाज़ दी—"सत्तार ! ऐ सत्तार !"

कोई जवाब नहीं मिला। उन्होंने फिर आवाज़ दी—"सत्तार !"

कोठी की पिछली दीवार की आड़ से उनका ड्राइवर मंगतराम दौड़ता हुआ निकला। "जी हुजूर !"

"अरे, कहाँ है यह सत्तार ! उधर से आवाज़ दी, तो जवाब नहीं। इधर से पुकार रही हूँ, तो पता नहीं। यह कहाँ ग़ायब है ?"

"हुजूर, वह बड़ी सुब्ह से अपनी नानी के घर गया है। मुझसे कह गया था, कि आपको बता दूँ।"

"मगर क्यूँ गया है घर ? और किसी से पूछा-गछा क्यूँ नहीं ?" वह गुस्से में बोलीं।

"सरकार, उसके पास एक लड़का आया था, कि पेपर मिल के जिस क्वार्टर में उसकी नानी रहती थी, वहाँ पानी चला गया था न—तो वह निशातगंज चली गयी थीं। वहाँ वह सब्ज़ी बेचती है न, और उसकी बेटी भी वहीं रहतीं थी।....पेपर मिल वाले क्वार्टर में ताला लगा हुआ था, तो रात की किसी ने पानी के ही अन्दर घुस कर उसका ताला तोड़ दिया।"

"तो सत्तार के जाने की क्या ज़रूरत थी ?....वह क्या पुलिस है ? यहाँ सैलाबज़दों के लिए मीटिंग होने वाली है, तो कौन उसमें चाय-पानी देगा ? और तुम यहाँ खड़े-खड़े इतनी लम्बी-लम्बी बाते क्यूँ कर रहे हो ? तुमसे तो मैंने कहा था न, कि साढ़े-ग्यारह बजे रानी रोटीपुर के लिये मोटर ले जाना।"

"जी, हुजूर। वह मुझे याद है।....बस, मोटर ही धो रहा था।"

"अच्छा—तो क्वार्टरों की तरफ़ जा रहे हो, तो ग़फ़ूर से कहना कि बड़े बरामदे में बीस आदमियों के लिये चाय लगेगी। बल्कि उसे यहाँ भेज दो, तो मैं खुद ही बता दूंगी।....जल्दी जाओ। वह बाज़ार न चला जाये।....और छोकरे से कहो, कि वह कपड़े-वपड़े बदल ले। कहीं मेहमानों के सामने वैसे ही न आ जाये लीतरे लगाये।"

वह बड़बड़ाती हुई, अपने कमरे में चली गयीं—"अब इसी वक़्त इस कम्बख्त की नानी के घर में चोरी होनी थी।...आख़िर चोरी में वह क्या करने गया है? बस जमा होकर हुल्लड़ मचा रहे होंगे। जाहिल कहीं के!"

फिर वह अपनी आलमारी खोलकर कपड़े निकालने लगीं। नारंजी टाफटा का गरारा, नारंजी मैसूर सिल्क की क़मीज़, नारंगी शैफ्फ़ोन का दुपट्टा। कपड़े पहन कर, वह मेक-अप करने लगीं। पाउडर मल ली, लिपस्टिकों की क़तार में से एक नारंजी रंग की लिपस्टिक चुन कर लगा ही रही थीं, कि दरवाज़े पर दस्तक हुई।

"कौन?" वह झुंझला पड़ीं।

"हुजूर, मैं हूँ ग़फ़ूर।"

"अच्छा, तुम हो।....देखो, सामने वाले गोल बरामदे में बीस आदमियों के लिये कुर्सियाँ वग़ैरा ठीक-ठाक कर दो।... इतनी ही चाय होगी। कुछ काफी, कुछ चाय, और पन्द्रह-बीस कोका-कोला भी.... स्टोर से दो पैकेट मोनाको ले आओ और आध सेर नमकीन काजू। फ़्रिज में फल रखे हैं।....मगर अंगूर मत निकालना। केले काफी होंगे। ... और इस वक़्त बाजार न जाना। छोकरे को भेज दो।" और वह फिर लिपस्टिक लगाने लगीं।

बरसाती में एक सब्ज़ रंग की ऐम्बैसेडर आकर रुकी। उसमें से मक़सूद साहब और कुंअरपालसिंह उतरे। सीड़ियाँ चढ़कर बरामदे में आये, तो उनकी नज़र गमलों में लगी हुई नागफनियों पर पड़ी, बोले—

"मक़सूद साहब, जरा यह नागफनी देखियेगा। बड़ी नायाब मालूम होती है।"

मक़सूद साहब हाथ में पकड़े हुए सिगरेट के डिब्बे में से एक सिगरेट निकाल कर सुलगा रहे थे। बग़ैर देखे ही बोले—"अरे साहब, यह लोग बड़े शौकीन हैं।" फिर मुड़ कर ड्राइवर से बोले "गाड़ी ले जाओ। बेगम साहिबा को हज़रतगंज जाना है। ग्यारह बजे तक ले आना नहीं बारह, साढ़े-बारह तक।"

इतने में अन्दर से बेगम इरफ़ान ने जाली का दरवाज़ा खोला। "आदाब अर्ज़ है! आप लोगों को आये क्या देर हुई?"

कुँअर साहब जल्दी से आगे बढ़े। "वाह, बेगम साहिबा! आप तो चश्मे बद दूर—अब क्या कहूँ!"

बेगम साहिबा ज़रा-सा लजायीं, एक-दो बल खाये, मुस्करायीं। मक़सूद साहब ने गर्दन हिलाई। "अरे साहब यह तो सदा-बहार हैं, सदा-बहार! बाज़ लोग ऐसे होते हैं, कि वक़्त उनके आगे झुक जाता है। तस्लीमात अर्ज़ करता हूँ!" और उन्होंने ड्राइंग-रूम का दरवाज़ा खोला।

बेगम साहिबा ने बड़ी अदा के साथ पीछे से गरारा समेटा, कमर लचकाई, और कड़कड़ाती एड़ियों पर लहराती, बलखाती एक सोफे में धँस गई। कुँअरपालसिंह उनके पास ही सोफे पर बैठते हुए बोले—"तो आप ने सैलाबज़दों के लिये यह मीटिंग कर ही डाली, बेगम साहिबा।"

बेगम साहबा अपनी बारीक आवाज़ में बोलीं—"जी हाँ। मैंने सोचा, कि हमारी महिला संघ की तरफ़ से भी तो आख़िर कुछ काम हो जाना चाहिये।"

मक़सूद साहब खड़े आतिशदान पर एक हाथ धरे, दूसरे हाथ में लिये हुए सिगरेट के कश खींच रहे थे। वहीं से बोले—"तो फिर साहब हम लोग तो बेमौक़ा आ गये?"

बेगम साहिबा हँसी। "जी नहीं। मशविरे में तो सभी शरीक़ हो सकते हैं। अलबत्ता जो चन्दा जमा होगा, वह महिला संघ की तरफ़ से हुकूमत को दिया जायेगा।"

"अच्छा, तो गोया काम करेंगे मर्द, और नाम होगा औरतों का!"

बेगम साहिबा बड़े दिलकश अन्दाज़ से झेंपी ही थीं, कि बाहर किसी मोटर की ज़ोरदार गरज और खडखड़ाहट सुनाई दी। चीखते हुए ब्रेक लगे। मक़सूद साहब ने खिड़की से बाहर झाँका। "लीजिये, वह नवाब पुत्तन साहब की रॉल्सरायस आ पहुँची। और भी कई लोग हैं उनके साथ।"

कुँअरपालसिंह ने इस गरज का और मक़सूद साहब की बात का कोई नोटिस नहीं लिया। आहिस्ता से बोले—"अगर महिला संघ के लोग आ रहे हैं, तो...."

बेगम साहिबा उनकी बात समझ गयीं, और अर्थपूर्ण अन्दाज़ में मुस्करायीं। "जी हाँ। मेरी गाड़ी उनको लेने गयी है।"

लखनऊ की इस ऊँची सोसाइटी में सभी को मालूम था, कि कुँअर पालसिंह रानी रोटीपुर के पुराने आशिकों में थे, और सिर्फ इस बिना पर रद कर दिये गये थे, कि वह राजाओं के नहीं, ठाकुरों के खानदान से थे। कुँअरपाल के लिये यह सदमा असह्य हो उठा था, और वह पेरिस चले गये थे। वहाँ कई साल तक ग़म ग़लत करने के बाद जब लौटे थे, तो राजेश्वरी की शादी राजा रोटीपुर से हो चुकी थी, जो उससे उम्र में तीस साल बड़े थे। वापस आकर उन्होंने देखा कि राजेश्वरी के हुस्न की तपिश और भी बढ़ गई है, और उसकी नज़रें अभी तक सूरज की किरणें हैं, जिन्होंने निगाहें मिलते ही उनके दिल पर पड़ी हुई पेरिस की शबनम को पलक झपकते में उड़ा दिया। बेगम मतीन इस उलट-पलट को जानती थीं, और दोनों से सहानुभूति रखती थीं। क्योंकि राजेश्वरी से शादी के बाद राजा रोटीपुर की समझ में यह आ गया था कि अगर मेक्स-फैक्टर का मेक-अप और ब्राडवे की चोलियाँ न

होतीं, तो बेगम मतीन के उस उत्थान का पतन आ चुका होता, जिसे वह अनश्वर समझा करते थे। वैसे अब रानी रोटीपुर की उम्र तीस बरस के क़रीब थी। मगर बेहद खूबसूरत होने के साथ-साथ अब उन्होंने सामाजिक कामों में भी हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। और इस सिलसिले में वह महिला संघ की मीटिंगों में अक्सर बेगम मतीन के यहाँ आया-जाया करती थीं। और मीटिंगों में बहस का क्या है, शाम हो ही जाती थी, और जब अँधेरा हो जाता था तो वह अकेली ड्राइवर के साथ क्योंकर जा सकती थीं। कुँअरपाल महिला संघ के संरक्षक की हैसियत से बराबर मीटिंगों में शरीक़ होते थे।

नवाब पुत्तन साहब के साथ डाक्टर सक्सेना थे, कमला देवी थीं, जो सूती साड़ी पहने थीं, कम्यूनिस्ट एम० एल० ए० नेमान साहब थे, अग्रवाल साहब थे, जिनकी लखनऊ में दवाओं की सबसे बड़ी दूकान थी, और मिसेज़ अग्रवाल थीं।

मक़सूद साहब आहिस्ता से बोले—"ओफ़्फ़ोह, पुत्तन साहब के खटारे में कितने लोग भर आये हैं। एक-के-बाद एक निकलते ही चले आ रहे हैं।....यह कमला देवी तो, भई गड़बड़ आदमी हैं। इनको किसने बुलाया ?"

बेगम मतीन उठ कर दरवाज़े की तरफ़ जाते हुए बोलीं—"भई, अब क्या किया जाये ? एलेक्शन में जीतती है कम्बख्त, इसलिये इसकी खुशामद करनी पड़ती है। एक-एक किसान ने इसको वोट दिया था—हिन्दू, मुसलमान, सब ने। वैसे सुना है, कि नवाब पुत्तन साहब ने इसको एलेक्शन लड़ने के लिये कुछ रुपया भी दिया था। तभी तो ठाकुर हरनामसिंह हार गये।....काम भी तो बहुत करती है।"

इतने में नवाब साहब की मोटर के पीछे रिक्शा आ खड़ा हुआ। उसमें से पहले मुश्ताक़ साहब उतरे, जो फ़ैज़ाबाद के ज़मींदार थे, और जिनकी कोठी गोखले मार्ग पर थी। फिर माथुर साहब उतरे। यूनिवर्सिटी में पचीस-तीस बरस तक अर्थशास्त्र पढ़ाने के बाद उन्होंने

पेंशन ले ली थी, और अब महानगर में घर बनवा लिया था। दो-तीन मिनट तक रिक्शे वाले से किराये के पैसों पर झगड़ा करने के बाद मुश्ताक साहब छड़ी टेकते, काँखते-कूँखते, अपना भारी-भरकम जिस्म घसीटते हुए सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। उनकी घिसी हुई चायना सिल्क की शेरवानी पर शिकनें पड़ी हुई थीं। पायजामा एक दिन का पहना हुआ लगता था, मुँह में पान था, जिसकी पीक बाछों तक बही हुई थी, और उसमें डली के बारीक-बारीक ज़र्रे तैर रहे थे। आंखों में उदासी थी— ऐसी उदासी, जो खिसियाहट से पैदा होती है, ऐसी खिसियाहट जो ज़मींदारी खत्म होने के बाद उन पर स्थायी रूप से छाई रहती थी।

माथुर साहब सूट पहने थे, जो काफी क़ीमती मगर बहुत पुराना लगता था। उनके दाहिने हाथ में एक घिसा हुआ चमड़े का पर्स था, जिसमें से अभी उन्होंने रिक्शे वाले को पैसे दिये थे, और बायें हाथ में एक सस्ते किस्म का सिगार था। उनका क़द नाटा था, और जिस्म गोल। आँखों में ऐसी चमक की, जो शायद कभी मेधा रही होगी, और अब ज़िन्दगी के बचे-खुचे तार समेटने वाली होशियारी बन गई थी।

जब सब लोग बैठ गये, तो बरसाती में क़दमों की आहट हुई। बेगम मतीन ने जाली से झाँक कर देखा। बरामदे की निचली सीढ़ी पर दो नौजवान खड़े थे। एक सफ़ेद पतलून पहने था, एक ख़ाकी। उन दोनों के पीछे एक और नौजवान था।

इतने में नवाब साहब की नज़र बाहर गई। वह एकदम उठे, दरवाज़ा खोला, और मुस्कराये। "आइये, आइये, ! मुझे तो उम्मीद नहीं थी, कि आप लोग आयेंगे।" फिर वह तीनों को अन्दर लाये, और सबसे परिचय कराया। "ये तीन नौजवान इंजीनियर हैं। आप निहाल सिंह, आप बोस और आप इम्तेयाज़। आप दोनों की अभी हाल ही में लखनऊ में पोस्टिंग हुई है और आप, निहालसिंह, तो यहीं लखनऊ के रहने वाले हैं, और यहीं काम भी करते हैं। ये लोग मुझे काफ़ी हाउस में मिले थे और इनकी कुछ बातें सुन कर मैंने मुनासिब

समझा, कि इनको यहाँ आने की दावत दूं ।"

बेगम मतीन सोफ़े पर ज़रा-सा उठीं, और फिर बैठ गयीं। "बड़ी खुशी हुई आप लोगों से मिल कर !....मगर आप लोग किधर से आ गये कि पता ही नहीं चला ।"

निहालसिंह ने खड़े-खड़े जवाब दिया -"जी, हम लोग बस से आये और नुक्कड़ पर उतर गये ।"

बोस और इम्तेयाज़ भी उसके पास ही खड़े पैर बदल रहे थे। दोनों की समझ में नहीं आ रहा था कि कहाँ बैठें। इतने में फ्रान्सीसी खिड़की के नीचे रखे हुए एक तख़्त की तरफ से आवाज़ आई—"आइये, आप लोग इधर आ जाइये ।"

तख़्त पर एक लड़की बैठी थी, सूती साड़ी पहने। निहाल, बोस और इम्तयाज़ उधर बढ़े। वह ज़रा-सा खिसक गई। तीनों तख़्त पर बैठ गये।

लड़की बोली—"मैं कमला सहाय हूँ। मैंते सीतापुर से एलेक्शन लड़ा था। एम० एल० ए० हूँ। मेरा एक भाई भी इंजीनियर है। मुझे नौजवान इंजीनियरों से मिल कर बहुत ख़ुशी होती है। हमारे देश को आप ही लोग बनायेंगे।"

बोस ने उसे कनखियों से देखा। वह इस तरह नौजवान इंजीनियरों का ज़िक्र कर रही थी, जैसे बड़ी बुज़ुर्ग हो। होंठ दबा कर बोला—"तो आप ने किस टिकट पर एलेक्शन लड़ा था ?"

"आज़ाद पर।....वैसे मेरे ख़्यालात सोशलिस्ट हैं।" फिर मुस्करा कर बोली—"आप मुझे देखकर हैरान मत होइये। मैं इतनी छोटी नहीं हूँ, जितनी लगती हूँ। मेरे दो बच्चे हैं। हमारे यहाँ फार्मिंग होती है, और मेरे पति ने कई गाँवों में स्कूल खोल रखे हैं, जहाँ वह जा-जाकर पढ़ाते हैं।...हम सीतापुर के देहात में रहते हैं। हम एक-एक किसान को जानते हैं।"

इस आख़िरी जुमले ने तो बोस को बिल्कुल ही पछाड़ दिया। वह

हैरान होकर दुबली-पतली, छोटी-सी लड़की का मुँह देखने लगा, जो इतने आत्म-विश्वास से बात कर रही थी, अपने क्षेत्र के एक-एक किसान को जानती थी, एम० एल० ए० भी थी, और दो बच्चों की माँ भी — और इतनी छोटी-सी लगती थीं।

"तो आप आजकल यहीं होंगी ? एसेम्बली हो रही है।" इम्तयाज़ ने पूछा।

"हाँ, होना तो यही चाहिये था, पर मैं तो आजकल अपने क्षेत्र में हूँ। वहाँ कुछ गाँवों में पानी आ गया है। हम लोगों को हटा रहे हैं। मैं कल शाम लखनऊ आई थी। कुछ दवायें और सामान ले जाने के लिये।.... फिर नवाब साहब से मुलाक़ात हो गई, और उन्होंने इस वक़्त यहाँ इस मीटिंग में आने के लिए मुझसे कहा। नवाब साहब और मेरे स्वर्गवासी पिताजी में बहुत दोस्ती थी।....मगर देखिये अब आधे-घंटे से ज़्यादा हो गया, और अभी तक कोई काम शुरू नहीं हुआ। और मुझे दो बजे की गाड़ी से वापस जाना है।"

उसने अपनी क़लाई पर बँधी हुई सस्ती-सी हिन्दुस्तानी घड़ी देखी, और बेचैनी के साथ पहलू बदला।

निहालसिंह खामोश बैठा, यह सब सुन रहा था।

सोफेपर बेगम मतीन और कुँअरपाल बैठे, मीटिंग का एजेंडा बना रहे थे। पासही नवाब मतीन साहब अपनी कुर्सी से झुके, और डाक्टर सक्सेना गर्दन आगे को बढ़ाये, झाँक-झाँक कर एजेंडा देख रहे थे, और राय दे रहे थे। "जी हाँ, रख लीजिये।....क्या मुज़ायका है ?....क्या हर्ज है ?....जी हाँ, हो सकता है।"

इतने में बाहर से मोटर का पट बन्द होने की आवाज आई, और साथ ही मक़सूद साहब की आवाज—"लीजिये....वह रानी साहबा आ गयीं। और इन दोनों आवाज़ों से कमरे में उलट-पुलट हो गई। मगर कुँअरपाल उसी तरह एजेंडा का काग़ज मेज पर रखे लिखते रहे। बेगम साहबा पीछे से गरारा सँभालती बरामदे में निकल गयीं। और फिर

बरामदे से आवाज़ें आने लगीं। "आदाब अर्ज़ करती हूँ!"

"आओ, आओ, मेरी जान! बड़ी देर लगाई। हम सब इन्तज़ार कर रहे हैं। वाह, क्या अच्छी साड़ी पहनी है!....आओ, आओ!.... यह क्या? अरे, इसकी क्यों तकलीफ़ की? वह तो मैंने यूँही कह दिया था।"

"जी नहीं, यह आपकी फ़रमाइश नहीं है। यह—कुछ और है।.... वह राजा साहब शिकार पर गये थे। पानी के बढ़ने से कुछ मुर्गाबियाँ भी गिरती हैं और मछलियाँ तो बहुत मिलती हैं।....तो मैंने कहा, कि कुछ भुनवा कर लेती चलूँ....इसी में देर भी हो गई।....माफ़ कीजियेगा।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं।"

बेगम मतीन के पीछे खड़े हुए गफ़ूर ने रानी साहबा के पीछे खड़े हुए ड्राइवर से स्टेनलेस स्टील का बड़ा-सा नाश्तेदान ले लिया। दोनों महिलायें ड्राइंगरूम में दाखिल हुईं। मर्द सब खड़े हो गये। मिसेज़ अग्रवाल ने अपनी पुरानी बोसीदा चप्पलों में अपने बेवाई-फटे पाँव और फ़िट किये, बनारसी कीमती साड़ी का पल्ला सँभाल कर ज़रा-सा उठीं, हाथ जोड़ कर नमस्ते की, और फिर बैठ गईं।

रानी साहबा सोफ़े पर बैठने लगीं, तो उन्होंने कुँअरपाल को देखा। कुँअरपाल ने भी निगाहें उठाईं, रानी साहबा को देखा, एक आह भरी, और फिर जल्दी से काग़ज बेगम मतीन की तरफ़ बढ़ाते हुए बोले— "लीजिये, साहब! इतना एजेंडा तो बन गया है। कार्यवाही शुरू की जा सकती है।....बाक़ी और जो कुछ रानी साहबा फरमायें।" और वह सोफ़ पर से उठ कर पास पड़ी गद्देदार कुर्सी पर बैठ गये। बेगम साहबा उनकी जगह सोफ़े पर बैठ गयीं और राजेश्वरी का हाथ पकड़ कर बोलीं—"डियर, यह कितना अच्छा पन्ना है तुम्हारी अँगूठी में! इससे पहले मैंने नहीं देखा था।....हिन्दुस्तान से बाहर का मालूम होता है।"

"जी हाँ।" राजेश्वरी ने कसमसा कर कुँअरपाल को देखा।

"इस हरी साड़ी पर तो यह बहुत मैच कर रहा है।"

अग्रवाल ने अपनी इम्पोर्टेड घड़ी देखी, और आहिस्ता से बोले "अब कार्यवाही शुरू होनी चाहिये।"

माथुर साहब ने अपनी आवाज़ ऊँची की—"साहब अब मीटिंग शुरू हो। बहुत देर हो गई।" वह जलसों में जाते थे, तो ज़्यादातर यह भूल जाते थे, कि अब क्लास नहीं पढ़ा रहे हैं, रिटायर हो चुके हैं।

मक़सूद साहब बोले—"हाँ साहब। पहले किसी को सदर चुन कर मीटिंग को बाक़ायदगी की शक़्ल दे दी जाये।"

"चुनना क्या है? रानी साहबा सदारत करेंगीं।" बेगम मतीन बोलीं।

लोग इधर-उधर से खिसक कर क़रीब आ गये।

सबसे पहले बेगम मतीन ने सदर साहबा की इजाज़त से इस मीटिंग के बुलाये जाने के उद्देश्य बयान किये। अपनी तक़रीर में उन्होंने यह भी बताया, कि हिन्दुस्तान से बाहर के मुल्कों में जब सैलाब आता है, तो क्या किया जाता है, और लोग किस तरह काम करते हैं। यह नहीं कि हुकूमत पर सब इल्ज़ाम लगा दिया, और खुद हाथ झाड़ के अलग हो गये!

जब उनकी तक़रीर खत्म हो गई, तो निहालसिंह बोला—"बेगम साहबा, आपने उन मुल्कों का ज़िक्र नहीं किया, जहाँ अब सैलाब नहीं आते।"

बेगम साहबा बोलीं—"मैं आपका मतलब नहीं समझी।"

कमला ने गर्दन आगे को करके कहा—"इनका मतलब यह है, कि आपने दुनिया भर के मुल्क तो गिना दिये, मगर किसी सोशलिस्ट मुल्क का नाम नहीं लिया।"

सब लोग कमला को घूरने लगे। मक़सूद साहब आहिस्ता से बोले—"मैंने तो आपसे पहले ही कहा था, कि यह गड़बड़ करेगी।"

बेगम साहबा ने उनका हाथ दबाया, और जल्दी से बोलीं "बेह-तर हो कि बहस में पड़ने के बजाय हम अपने काम का प्लान बना लें। एक तरफ़ से सब की राय ले ली जाये। पहला आइटम यह है, कि शहर के जिन-जिन हिस्सों में पानी आ गया है या आने का ख़तरा है, वहाँ से लोगों को कैसे निकाला जाये, और कहाँ-कहाँ ले जाया जाये।"

मक़सूद साहब बोले—"देखिये, निकालने का काम तो गवर्नमेंट कर रही है। और उसने पुलिस और मिलेटरी, दोनों ही का इन्तज़ाम किया है। और...."

"मगर यह बात कहाँ तक सही है, कि अभी न पुलिस को पूरा अख़्तियार दिया गया है, और न मिलेटरी को। और दोनों में झगड़ा हो रहा है। और गवर्नमेंट क्या फ़ैसला करेगी, जब कि उसकी एक टाँग दिल्ली में रखी है, और कुर्सी डगमगा रही है ? आये दिन चीफ़ मिनिस्टर साहब दिल्ली में मौजूद रहते हैं। और उनमें जनसंघी सबसे आगे हैं।" कमला ने कहा।

"देखिये, यहाँ राजनीति की कोई बहस नहीं होगी," माथुर साहब ने अपनी प्रोफेसरी-वाली आवाज़ में कहा।

मक़सूद साहब बोले—"देखिये, साहब, हमारी कमेटी के लिये यह बड़ा मुश्किल है, कि वह लोगों को निकाले। दो-चार नावें ले लेंगे, दस-बीस को निकालेंगे, तो बाक़ी लोग हमारी जान पर बन जायेंगे। खर्च भी बहुत पड़ेगा। सुना है, कि नाव वाले बीस रुपया रोज़ माँगते हैं।"

मुश्ताक़ साहब ने अपनी छड़ी पर ठुड्डी टेकी, और सर हिला कर निराशा के अन्दाज़ में बोले—"यही तो मुश्किल है, साहब ! इन नीच कौमों ने इतना सर उठाया है कि क्या कहा जाये क्या मल्लाह, क्या किसान, क्या बढ़ई, क्या चमार। अभी उस दिन एक कुर्सी का पाया बनवाना था, तो मैंने दो बार मुलाजिम को भेजा, तब तीसरी

बार में आया। और आते ही बहस करने लगा, कि 'साहब, बनवाई तै कर लीजिये।' मैंने कहा, 'भाई, हम खुद ही समझ कर दे देंगे,' तो ढिठाई और बदतमीज़ी से कहने लगा, कि 'नहीं, साहब, हमने आप लोगों का समझना बहुत देखा है।' आख़िर चार रुपये लिये। देने पड़े मजबूरन। दादा मरहूम की कुर्सी थी। बेमरम्मत कैसे पड़ी रहती? ऐसा बुरा ज़माना आ लगा है, कि कुछ कहने को नहीं।"

कमला ने एक बार फिर अपनी कलाई-घड़ी देखी, और पहलू बदल कर बोली—"जनाब सदर, कोई काम की बात भी होगी, या....मुझे तो दो बजे की गाड़ी से जाना है।"

सदर साहबा बोलीं—"अच्छी बात है। तो आप ही कुछ कीजिये।"

"मैं सिर्फ़ यह कहना चाहती हूँ, कि अगर सैलाबज़दों की मदद करनी है, तो कोई व्यावहारिक तरीक़ा अपनाइये।"

बेगम मतीन बड़े व्यंग्यात्मक अन्दाज में बोलीं—"जैसे?"

निहालसिंह जल्दी से कहने लगा—"जैसे यह कि जहाँ-जहाँ अभी पानी नहीं पहुँचा है, वहाँ सबसे पहले लोगों को होशियार किया जाये, ताकि वे अपने हटने का खुद इन्तज़ाम करें, ताकि हमारे पास बस फिर उन लोगों की ज़िम्मेदारी रह जाये, जो या तो पानी में फँसे हैं, या फिर बेघर होकर कैम्पों में पड़े हैं।"

"यह निहायत माक़ूल तजवीज़ है। इसके लिये एक कमेटी बना दी जाये," मक़सूद साहब बोले।

"कमेटी!" बोस चौंक पड़ा। "अरे साहब, यह काम तो अभी फ़ौरन शुरू होना चाहिये। पानी क्या कमेटी बनने का इन्तज़ार करेगा?"

"फिर यह है, कि बाढ़ के पानी से जो लोग निकाले जा रहे हैं, उनमें बीमारियाँ फैलने का बड़ा सख्त ख़तरा है। इसलिये कैम्पों में इंजेक्शन और दूसरे क़िस्म की मेडिकल एड का इन्तज़ाम होना चाहिये।" कमला ने कहा।

"इसका कुछ इन्तज़ाम तो गवर्नमेंट ने किया है," माथुर साहब बोले।

"मालूम नहीं गवर्नमेंट ने कहाँ इन्तज़ाम किया है। आज सुबह-तड़के मैं चार कैम्पों में गया था। अब तक तो किसी में इन्तजाम नहीं हुआ है।" इम्तेयाज़ फुँकारा।

"भाई, अब यह सब तो मैं नहीं जानता। मगर डाक्टर सिन्हा कल बता रहे थे, कि एजुकेशन मिनिस्टरी की तरफ से एक सर्कुलर मेडिकल कालेज भेजा गया है, कि एम० बी० बी० एस० के कुछ लड़के-लड़कियाँ वालंटियरी करना चाहें, तो उनकी फ़ेहरिस्त भेज दी जाये। और वह सर्कुलर थ्रू प्रॉपर चैनल होता हुआ डाक्टर सफ़दर को भेज दिया गया है। वह मेडिकल कॉलेज के हैड है।"

नवाब पुत्तन साहब ने डाक्टर सक्सेना की तरफ़ देखा। डाक्टर सक्सेना का ग़ुस्से के मारे एक रंग आता था, एक जाता था। ज़ब्त करके बोले—"दो-चार दिन की देर से भी इन कैम्पों के अन्दर हैज़ा और टॉयफायड फैलने का डर है। बीसों आदमी ऐसे हैं, जिन्होंने कैंपों में लाये जाने से पहले बाढ़ का पानी पिया है—इस टालबाजी से कैसे काम चलेगा? "

मतीन साहब ने उनको हाथ से रोक कर, धीमे अन्दाज़ में कहा—"मेरा ख्याल है, कि हमारी कमेटी में यह काम डाक्टर सक्सेना के सुपुर्द कर दिया जाये। यह अपने और साथियों और डाक्टरों को लेकर जल्दी-से-जल्दी कैम्पों में काम शुरू कर दें। अपनी तरफ़ वाले कैम्प में लोगों को इंजेक्शन लगवाने का काम मैं अपने ज़िम्मे लिए लेता हूँ। मगर, रानी साहबा, दवाओं के इंतज़ाम के लिये...." और उन्होंने ज़रा रुक कर अग्रवाल की तरफ देखा।

बेगम मतीन जल्दी से दुपट्टा सँभाल कर बोलीं—हाँ, अग्रवाल साहब, दवाओं के बारे में तो आप ही हमारा मार्ग-दर्शन कर सकेंगे।"

अग्रवाल साहब कुर्सी पर ज़रा-सा आगे को हुए, तोंद अन्दर को

दबाई, एक फूले हुए गाल में दबे हुए पान को दूसरे फूले हुए गाल में दबाया, और एक अहमक़ाना मुस्कराहट के साथ बोले "जो हुक्म।"

बोस को उन पर ग़ुस्सा आने लगा। लखनऊभर में मशहूर था, कि अगर कोई दवा कहीं न मिले, तो वह अग्रवाल ब्रदर्स में मिलेगी। लेकिन यह भी मशहूर था, कि उस दवा के जो दाम कहीं न हों, वह अग्रवाल ब्रदर्स के यहाँ सुन लीजिये। कमला को भी यह बात मालूम थी, क्योकि अपने क्षेत्र में फैलने वाले संक्रात्मक रोगों के लिये वह लखनऊ से दवाएँ मँगवाया करती थी। उसने बोस की तरफ ऐसे देखा, जैसे उसका दिल बढ़ा रही हो कि 'हाँ-हाँ, कहो।'

बोस ने कहा--"अग्रवाल साहब, एक तो आप सिर्फ़ यह बता दीजिये, कि आप हैजे, टॉयफायड वग़ैरा के अन्दाज़न कितने इंजेक्शन सप्लाई कर सकेंगे। यह बात बिलकुल तै हो जानी चाहिये, क्योंकि वक़्त पर अगर चीज़ न मिली, तो बड़ी गड़बड़ी होगी। दूसरे यह कि जैसे-जैसे माँग बढ़ेगी, वैसे-वैसे दाम बढ़ेंगे तो नहीं ?"

"और अगर घट जाये, तो ?" कम्यूनिस्ट एम० एल० ए० नेमान साहब मज़ाकिया अन्दाज़ में बोले।

कमला की त्योरी पर बल आ गया। "नेमान साहब, आप भी जानते हैं, और हम सब भी, कि आजकल सिर्फ़ एक चीज़ के दाम घट रहे हैं—आदमी की जान के ! और हर चीज़ के दाम बढ़ रहे हैं।"

अब माथुर साहब बोले "रानी साहबा, मैं अग्रवाल साहब के पड़ोस में रहता हूँ। दवाओं की सप्लाई का काम मेरे ज़िम्मे कर दिया जाये। अग्रवाल साहब जब बाहर हों, तो मिसेज अग्रवाल हम लोगों को दवाएँ निकलवा दें।"

रानी साहबा के बजाय बेगम साहबा बोलीं—"जी हाँ, ज़रूर-ज़रूर। कुँअरपाल साहब, लिख लीजिये।"

कुँअरपाल ने नोट किया। वह अब तक एक शब्द भी नहीं बोले थे। बस, कार्यवाही नोट कर लेते थे, और कभी-कभी एक आह भर

लेते थे।

"और आपकी पार्टी क्या करेगी ? हमारी कुछ मदद तो ज़रूर करेंगे आप लोग ?" पुत्तन साहब नेमान साहब से मुखातिब हुए।

नेमान साहब पहलू बदलकर बोले—"देखिये, नवाब साहब, कानूनी बात तो यह है, कि मैं इस वक़्त यहाँ अपनी पार्टी की नुमाइंदगी नहीं कर रहा हूँ। मैं अपनी व्यक्तिगत हैसियत से यहाँ आया हूँ। दूसरी बात यह है, कि अभी रस्तोगी साहब के ग्रुप से बात होकर एम० एल० एज़ की एक कमेटी बनी है। यह तै हुआ है, कि हम लोग जो उनके मेम्बर हैं, कमेटी से पूछे बग़ैर किसी सिलसिले में कोई क़दम न उठायें। आप मुझको काफ़ी हाउस से यहाँ ले आये। कमेटी की इजाज़त मैं ले नहीं सका। और अब हमारी पॉलिसी यह है, कि सब के साथ मिल कर ..."

"शायद अब आपकी पालिसी यह है, कि सब के साथ मिल कर डूब जाने दिया जाये।....क्या आप यह साबित कर सकते हैं, कि लेनिन का रवैया भी जनता के साथ यही था ?"

"मार्क्सिज़म के लिहाज़ से भी यही ठीक है, कि आप प्रतिक्रियावादियों के साथ समझौता करें।" कमला का गुस्सा बढ़ रहा था।

मक़सूद साहब आहिस्ता से बोले—"भई, यह औरत तो बड़ी गड़बड़ मालूम होती है। हर एक का मुँह पकड़ लेती है।"

कमला की बात से इम्तेयाज़ को भी कुछ सहारा मिला। "माफ़ कीजियेगा, नेमान साहब ! मैं भी परसों के अख़बार में रस्तोगी साहब का वह बयान पढ़ कर हैरान रह गया था, जिसमें आपकी तारीफ़ थी। मेरी समझ ही में नहीं आया, कि वह ब्लैक मार्केट वालों के सर पर हाथ रखने वाला आपकी तारीफ़ कैसे करने लगा? और आप ने उसको खुश करने के लिये क्या कहा, जो वह कहता है कि जितने कम्युनिस्ट एम० एल० ए० हैं, उनमें सबसे अक़्लमन्द आप हैं ?"

माथुर साहब धीरे से बोले—"आजकल नौजवानों की ज़बान को

बिल्कुल लगाम नहीं है। भला इन बातों का यहाँ क्या ज़िक्र है ?"

मुश्ताक़ बोले—"अरे साहब, जब इनके लीडरों में ही तहज़ीब नहीं, तो इनमें कहाँ से आयेगी ?....डाक्टर लोहिया को आप ने कल नहीं सुना। मैं तो इत्तफ़ाकन अमीनाबाद चला गया था। रिखबदास ज्वेलर्स के यहाँ।....वहाँ सुना कि पार्क में मीटिंग हो रही है, और डाक्टर लोहिया एक सिरे से सबको गालियाँ दे रहे हैं।....तमीज़ और तहज़ीब ज़मींदारों के साथ खत्म हो गई, साहब।"

नवाब पुत्तन ने ज़रा घबरा कर रानी साहबा की तरफ़ देखा, फिर निहालसिंह और बोस से कहने लगे—"मियाँ, यहाँ राजनीति पर बहस नहीं हो रही है। आप लोग असल विषय की तरफ़ ध्यान दें। ये सब बातें यहाँ से जाकर करियेगा। हिन्दुस्तान में जनतंत्र है। आप हर बात कह सकते हैं।"

रानी साहबा अपने सभापतित्व के अधिकारों का इस्तेमाल करते हुए कहने लगीं—"देखिये, इतना तो तै हो गया, कि डाक्टरी सहायता का ज़िम्मा डाक्टर सक्सेना लेंगे, और दवाओं की सप्लाई श्री और श्रीमती अग्रवाल करेंगे। बेगम मतीन के सुपुर्द कपड़े और खाना बाँटने का इन्तज़ाम है।....वह जैसे चाहें, अपनी कमेटी कवाप्ट कर लें।....और अगर आप लोग मंज़ूर करें, तो फिनांस का जिम्मा मुझे दे दीजिये।"

सब ने पुरज़ोर तरीक़े से सहमति प्रकट की। जब शोर कम हुआ, तो निहालसिंह खड़ा हुआ। उसके खड़े होने पर सब हैरान हुए, क्योंकि हर शख्स अभी तक अपनी जगह पर बैठा-बैठा राय दे रहा था। उसने किसी की हैरानी का नोटिस लिये बगैर संजीदा आवाज़ में कहना शुरू किया—"मैं नवाब पुत्तन साहब का बहुत मशकूर हूँ, कि वह मुझे यहाँ लाये, और हम लोगों को आप लोगों से मिलने का मौक़ा मिला।....मैं यहाँ आने के लिये फ़ौरन तैयार हो गया, क्योंकि मैं आप लोगों को एक खतरे से आगाह करना चाहता हूँ।" वह ज़रा-सा रुका, और फिर

अपनी बात जारी की "मुझे यह कहना है कि मैं और मेरे यह दोनों दोस्त—बोस और इम्तयाज़—हम तीनों इंजीनियर हैं। हम लोग पिछले तीन-चार दिन से सिकन्दर बाग़ वाले बाँध का मुआइना कर रहे हैं। और हमारा ख़्याल है, कि अगर पानी की धारा का यही हाल रहा, तो कल या परसों तक यह बाँध टूट जायेगा। हो सकता है, कि आज ही रात में टूट जाये....।"

"ऐ है, मियाँ, ऐसा न कहो।" बेगम मतीन ने घबरा कर अपने ब्राइटवे से कसे हुए सीने पर हाथ रखा। मुश्ताक़ साहब व्यंग्यात्मक आवाज़ में बोले—"तो, जनाब, बारिश किसने रोक ली, और सैलाब किसने रोक लिया, जो इस बाँध को टूटने से कोई रोक लेगा? जब ज़मींदारियाँ टूट गई, तो बाँध की क्या हक़ीक़त है?"

"हाँ, भगवान की लीला पर हमारा क्या बस है?" मिसेज़ अग्रवाल बोलीं।

"तो, मियाँ, यह बात तो आप को बड़े इंजीनियरों या पी० डब्लू० डी० या हुकूमत से कहनी चाहिये," नवाब साहब बोले।

निहालसिंह ने राल निगली। उसका चेहरा उतरा हुआ था। होंठ खुश्क थे। फिर भी उसने अपनी आवाज़ ऊँची की, और नवाब साहब से मुख़ातिब हुआ। "जब आप हम लोगों को काफ़ी हाउस के बाहर मिले, तो जल्दी में मैं आपको यह बता नहीं सका, कि इंजीनियर साहब को तो इतनी भी फुरसत नहीं थी, कि हमने जो टेकनिकल जाँच करके रिपोर्ट बनाई है, उसको देख लेते।"

अब के कुँवरपाल ने सर उठाया। "मंत्रालय में कहने के बारे में आपका क्या ख़्याल है?"

"मंत्रालय में भी हम लोग गये थे। पहले तो यही पता नहीं चला, कि किस मंत्रालय में जायें। सिंचाई, कृषि, इंजीनियरिंग, गृह—हर मंत्रालय का यही ख़्याल था, कि इस मामले का ताल्लुक़ दूसरे मंत्रालय से है। सो हम लोगों ने अब यह सोचा है, कि मुख्य मंत्री के

यहाँ जायें। ....आप लोगों से हमारी प्रार्थना है, कि आप में से कुछ लोग हमारे साथ चलें, तो हमारी बात की क़ीमत बढ़ जायेगी। हम सिर्फ़ यह चाहते हैं, कि कोई हमारी रिपोर्ट देख ले।" उसने कमला और नेमान की तरफ देखा।

"मगर, साहब, क्या मंत्रालय बाँध को थाम लेगा! मुख्य मंत्री क्या पानी से पीठ लगाकर बैठ जायेंगे?"

अबके बोस खड़ा हुआ। "जी नहीं, पानी को तो अब कोई ताक़त नहीं थाम सकती। मगर कम-से कम हुकूमत की तरफ़ से अगर ऐलान करके लोगों को खबरदार कर दिया जाये, तो बहुत-सी तबाही रोकी जा सकती है।"

बेगम मतीन ने पहलू बदला। "भाई यह सब बातें हमारी जूरिस-डिक्शन से बाहर हैं। हमने तो सिर्फ पानी से तबाह लोगों की इमदाद के लिये यह कमेटी बनाई है, और इसी के लिये यह मीटिंग बुलाई गई है।"

कमला जल कर बोली—"यही मैं आप से अर्ज़ कर रही थी, कि आप ने किसी सोशलिस्ट मुल्क का ज़िक्र नहीं किया, जहाँ रोक-थाम को महत्व दिया जाता है, जहाँ बाढ़ का आना ही सिरे से खत्म कर दिया गया है। और एक हम लोग हैं, कि हमें आज़ाद हुए चौदह साल हो गये, और अभी तक हर साल बाढ़ आती हैं....।"

अब इम्तयाज़ भी उठकर निहालसिंह और बोस के बराबर खड़ा हो गया, और बोला—"आप लोगों को हमारे साथ चलना चाहिये। कम-से-कम जिन्होंने जनता से वोट लिये हैं, वे तो अवश्य चलें।" उसने नेमान साहब और कमला की तरफ देखा।

नेमान साहब कसमसा के बोले—"साहब, आज शाम को तो मेरी ज़िला कमेटी की मीटिंग है। नये सेक्रेटरी का चुनाव होगा, वोट का सवाल होगा। और फिर मैं पार्टी के सैंक्शन के बग़ैर ऐसा कैसे कर सकता हूँ? और पार्टी का सैंक्शन मिल नहीं सकता क्योंकि नगर कमेटी

के सेक्रेटरी देहली गये हुए हैं। देहली में एक बहुत ज़रूरी मीटिंग हो रही है। अभी जनरल सेक्रेटरी मास्को से वापस आये हैं, और.... ।"

"लेकिन हमको सतीश कुमार साहब ने यक़ीन दिलाया है, कि वह हमारे साथ चलेंगे। वह भी जनरल कमेटी के मेम्बर हैं। उन्हें भी आज देहली जाना था, मगर उन्होंने आज रात अपना देहली जाना कैंसिल कर दिया।"

"आपको वह कहाँ मिले?"

"चारबाग कैम्प में," इम्तयाज़ ने कहा—"वहाँ कुछ कपड़े वग़ैरा बँटवा रहे थे। उन्होंने कहा, कि वह अपने साथ कुछ वालंटियरों को भी ले आयेंगे।"

"मगर सतीश कुमार साहब की इतनी सियासी जिम्मेदारी थोड़े ही है, जनाब, जितनी कि मेरी है। वह क्या एम० एल० ए० हैं? वह तो अखबार के एडीटर हैं, साहित्यिक हैं। जमा कर लायेंगे अपने पिट्ठुओं को।" नेमान ने व्यंग्यात्मक अन्दाज़ में कहा।

"मैं आपके साथ चलूँगी," कमला ने खड़े होकर कहा।

"मगर आप तो दो बजे की गाड़ी से ...।"

"मैं रात को चली जाऊँगी।"

"आप लोग किस वक़्त जायेंगे। मैं भी चला चलूँगा। किस मंत्री के यहाँ जाइयेगा?" माथुर साहब ने पूछा।

"आपको बताया तो है, कि अब मुख्य मंत्री रह गये हैं," इम्तयाज़ बोला।

"मुख्य मंत्री!" नेमान साहब ज़रा चौकन्ने हुए। "तो अच्छा.... तो मैं भी चला चलूँगा। मगर—मगर वह हैं कहाँ?....वह तो देहली गये हैं। रस्तोगी ग्रुप ने उनके नाक में दम कर रखा है।....देखिये, क्या सूरत निकलती है।"

"बहरहाल हम लोग तो ज़रूर जायेंगे। जिस तरह भी होगा कोशिश करेंगे, कि ऐलान निकल जाये। कम-से-कम लोग होशियार तो

हो जायें। आप हम लोगों को माफ़ कीजिएगा। हमारा फ़ौरन जाना ज़रूरी है।"

वे तीनों दरवाजों की तरफ़ बढ़ने लगे।

कमला भी उठी नवाब पुत्तन भी खड़े हो गए। कुँअर पाल कागज़ समेट कर बेगम मतीन की तरफ बढ़ाते हुए बोले—"लीजिये !"

"ऐं ! यानी कि आप ?"

"जी हाँ, मैं भी इन लोगों के साथ जाना चाहता हूँ।"

इतने में तीनों नौजवान इंजीनियर, कमला, नवाब साहब और डाक्टर सक्सेना बरामदे में निकल आए। कुँअरपाल ने अन्दर ही से इन लोगों को आवाज़ दी—"नवाब साहब ज़रा रुकियेगा। मैं भी हाज़िर हो रहा हूँ।"

माथुर साहब उनके पीछे-पीछे निकले, और बरामदे में तीनों इंजीनियरों के आगे खड़े होकर, लेक्चर देने वाले अन्दाज़ में बोले—"नौजवानो, बुरा मत मानना, मगर मेरी राय में यह सख्त बेवकूफ़ी है। औवल तो हम लोग यह बिल्कुल साबित नहीं कर सकते, कि यह बाँध टूटने वाला है। दूसरे यह है कि इस ऐलान से सख़्त घबराहट फैलेगी। मेरी समझ में नहीं आता कि आजकल के नौजवान हर वक़्त, हर बात पर घबराहट क्यों फैलाते रहते हैं। लोगों पर पत्थर फेंकें, दुकानें तोड़ें, उस्तादों से बदतमीज़ी करें।....मैंने तीस साल पढ़ाया, मगर, साहब, आजकल के नौजवानों से तो मैं कानों पर हाथ रखता हूँ। उनका कुछ भरोसा नहीं।"

बोस लाल-पीला होकर एकदम उनकी तरफ़ बढ़ा। "आपको हम पर भरोसा नहीं, तो हम को भी आप पर भरोसा नहीं।....वह दिन गए, जब डी० पी० मुकर्जी उस्ताद होते थे, तो उनका अदब भी होता था। अब हम किसका अदब करें ? उनका जो पढ़ाने के बजाय इंक्रिमैंट और टी० ए० में ज़्यादा दिलचस्पी रखते हैं ? इंजीनियरिंग करने के बाद दो साल बेरोज़गार फिरा। मेरी पढ़ाई में मेरी माँ का एक-एक

छल्ला बिक गया। दरख़्वास्तें लिखते-लिखते मेरी उँगलियाँ घिस गईं। इंटरव्यू में जाते-जाते कलेजा पिस गया। हम पत्थर नहीं फेंकेंगे, तो क्या फूल बरसायेंगे ?....अब वह पत्थर चाहें जिसे लग जायें। और अभी तो कुछ नहीं, हम तो आपको भी उठा कर फेंक देंगे।"

माथुर साहब हक्के-बक्के रह गए। नवाब पुत्तन साहब सहमे हुए, बोस को देखे जा रहे थे। इम्तयाज़ भी सक्ते में रह गया था। कमला मुस्करा रही थी। कुँअर इस बातचीत से बड़ा लुत्फ़ ले रहे थे। सक्सेना साहब चुप थे। फिर निहालसिंह ने आगे बढ़ कर, बोस की आस्तीन खींची। "बोस, होश में आओ।....चलो-चलो-बहुत हुआ।....आओ।"

बोस फनफनाता हुआ बढ़ा। "अजीब बात है। पूरी बात जानते नहीं, समझते नहीं और जिसे देखो, नौजवानों को गाली दे रहा है। वाह, भई ! आजिज़ आ कर तो आदमी खुदकुशी भी कर बैठता है, पत्थर फेंकना तो मामूली बात है।....छोड़ दे यार मेरी आस्तीन। बहुत पुरानी क़मीज है, फट जायेगी।"

अब के इम्तयाज़ ने उसे दूसरी तरफ़ से पकड़ा। "आओ, यार, ज़्यादा गुस्सा न करो।....अभी यह सोचना है, कि मुख्य मंत्री से क्या-क्या कहना है।....चलो भी।"

बोस की आँखों में आँसू छलक आये थे, और उसका चेहरा अभी तक गुस्से से तिलमिला रहा था। उसके दोनों दोस्तों ने उसे सीढ़ी के नीचे खींचा। और सब भी उतरे। और सब-के-सब पुत्तन साहब और कुंवरपाल की मोटरों मे बैठ गये।....

माथुर साहब बाहर से अन्दर आये, तो बेहद कसमसाये हुए थे। बाहर जो बातचीत हुई थी, वह अन्दर सब ने सुन ली थी। रानी साहबा चुपके-चुपके मुस्करा रही थीं। बेगम मतीन परेशान थीं। मुश्ताक़ साहब खाने-पीने की चीज़ों को देख रहे थे। चाय, काफी और नाश्ता मेजों पर लग गया था। और मिसेज़ अग्रवाल को यह फ़िक्र थी, कि अभी जाते हुए उसे सब्ज़ी भी लेनी थी, क्योंकि इधर के मार्केट में

सब्ज़ी हमेशा एक-दो पैसे सस्ती मिलती थी।

इश्तयाक साहब दो पेस्ट्रियाँ अपनी प्लेट में रखते हुए बोले "आखिर इन लोंगों को यह वहम कैसे हुआ, साहब, कि बाँध टूट जायेगा? यह अंग्रेज़ों का बनाया हुआ बाँध है। कोई मज़ाक है?"

"लेकिन मैं कहती हूँ, कि यह कुँवरपाल को क्या हुआ, जो एकदम से उनके साथ हो लिये?" बेगम साहबा ने हैरान होकर पूछा।

"जनाब, आजकल हर कोई पब्लिसिटी चाहता है," नेमान साहब बोले- "सच्चाई के साथ जनता की खिदमत करने की भावना अब किसमें रह गई है?" और उन्होंने ज़ोर से नलकी से कोका-कोला सुड़का।

"भई, कुँवरपाल तो फिर भी जवान है। यह पुत्तन साहब और डाक्टर सक्सेना की क्या शामत आई है, जो इस लौंडहाई में फँस गये? बुढ़ापे में अपनी गत बनवाएँगे। जैसी बदतमीज़ी इस वक़्त मेरे साथ हुई, क्या इन लोगों के साथ नहीं हो सकती? जी हाँ, काफी पीजिये। शकर चार चमचे। .. मैं पूछता हूँ, इन आवारागर्दों को बुलाया किसने? और यह साहबज़ादी कौन थीं? विमला—हाँ-हाँ, कमला। जी हाँ। शुक्रिया! पनीर के साथ मोनाको मुझे बहुत पसन्द है।"

बेगम मतीन ने कॉफ़ी बनाते हुए इत्तला दी—"यह फ़ैजाबाद ज़िला के रामधर सहाय साहब की बेटी है। पिछले साल जो सुरेन्द्र पाठक के मरने पर जगह खाली हुई थी न, उसमें इसने एलैक्शन जीता था।"

"अरे, यह रामधर की बेटी है?" इश्तयाक़ साहब चौंके। "वह तो बड़े माकूल आदमी हैं। मुझ पर बड़ी कृपा है उनकी साहब।.... बेटी ऐसी तेज़-तर्रार निकली।····बड़ी सोशलिस्ट बनती है। ठाकुर हरनामसिंह इसी से तो हारे थे।"

"अच्छा, इसी ने हरनाम को हराया था?"

"जी हाँ। रूस, बुल्ग़ारिया, चेकोस्लोवाकिया, सब घूम आई है।

पता नहीं क्या तिकड़म करके गई थी। यूथ फेस्टिवल में।" बेगम मतीन बात कर रही थीं, मगर उनकी परेशानी बढ़ती जा रही थी। सब-कुछ तो फ़िनांस कमेटी ही थी, जो इस घपले में राजेश्वरी के हाथ में चली गई। अब सारा रुपया लेकर वही खर्च करेंगी। मुख्य-मंत्री को खाक़ पता चलेगा, कि महिला संघ की तरफ से सैलाबज़दों की इमदाद के लिये मीटिंग बेगम मतीन ने बुलाई थी। आइडिया उनका था, और आइडिया ही तो असली चीज़ है। उन्होंने चाँदी की केतली से चीनी की एक प्याली में काफी उँडेलते हुए पूछा- "तो, डियर, यह रिपोर्ट कौन ले जाएगा चीफ-मिनिस्टर के यहाँ? तुम्हीं चले जाना। मैं तो इस झंझट में नहीं पड़ना चाहती।....मैं तो काम करना चाहती हूँ सिर्फ़ काम।"

राजेश्वरी ने उन्हें ग़ौर से देखा, और मुस्करा के बोली—"वाह! क्यों आप ले जाइयेगा। महिला संघ की सेक्रेटरी आप हैं कि मैं? मीटिंग आप ने बुलाई है कि मैंने? ...मैं अपने हिस्से का एक हज़ार का चेक अभी आपको दे देती हूँ। कुछ रसीद-बुकें दे दीजिये।"

बेगम मतीन ने इत्मीनान की साँस ली, और केक की प्लेट राजेश्वरी की तरफ बढ़ाते हुए बोलीं—"यह लो चाकलेट की पेस्ट्री।....भई, अभी तक बैम्बूका पेस्ट्री का स्टैंडर्ड नहीं गिरा। मैं तो वहीं से मँगवाती हूँ।"

इश्तयाक़ साहब दो पेस्ट्री उठाते हुए बोले—"अरे साहब, बस उस बुढ़िया की ही ज़िन्दगी तक है स्टैन्डर्ड। वह मरी कि स्टैन्डर्ड गिरा।"

११

नरेन्द्र ने शीशे के सामान से भरा हुआ एक बक्स उठाया, और बोला, "जब किसी कमरे में काम करते रहो, तो कुछ पता नहीं चलता, कि उसमें कितना सामान है। हम लोग इतनी देर से ये चीज़ें उठा रहे हैं, लेकिन खत्म ही नहीं होतीं।"

उसके डिपार्टमेन्ट का चपरासी झगड़ू अपना अँगोछा निचोड़ कर एक मशीन उठाने लगा, और बोला, "भइया, वह तो कहिये कि यहाँ आप लोगों ने कई दिन पहले से सामान उठाना शुरू कर दिया था, वरना बड़ी ही मुशकिल होती। गोमती जी तो बढ़ती ही चली आ रही हैं। हमारे चाचा का बेटा बता रहा था, कि अनवरसिटी के नाके पर मलटरी लग गई, और नाव चल रही है।' और आर्ट कालिज में भी पानी भर गया है। न जाने कितनी तस्वीरें बह गयीं, कितनी मूर्तियाँ गिर-गिर के टूट गयीं।"

नरेन्द्र एकदम चौंक पड़ा, और आलमारी के ऊपर से सामान उतारते हुए, अपने लम्बे दोस्त जाफ़र से बोला—"क्यों, जाफ़र, यूनिवर्सिटी में पानी आ गया क्या?"

"आपको अब खबर हुई। वहाँ कल शाम से ही पानी आ गया। तमाम रजिस्टर, रिकार्ड छतों पर पहुँचाये जा रहे थे। पता नहीं, कितने पहुँचे, कितने रह गये। मेरा दोस्त भूषण बता रहा था, कि बनर्जी साहब और उनके तमाम स्टूडेन्ट और टीचर तस्वीरें और आर्ट कालेज का और सब सामान उठा-उठा कर नाव से पार ले जा रहे हैं। मगर फिर भी वे लोग बहुत देर में पहुँचे। ढेरों सामान बरबाद हो गया। और वह बता रहा था कि देर में इसलिये पहुँचे, कि दो मोटर-बोटों में सैलाब कमेटी के लोग और उनके रिश्तेदार सैलाब का तमाशा देखने

चले गये थे। औस मोटर-बोटें मिली ही नहीं। और हम लोग तो यहाँ फँसे हैं।"

नरेन्द्र परेशानी और घबराहट से काँपने लगा। "अरे भई, हम लोगों को कैसे मालूम होता ? कल सुबह से तो यहाँ सामान निकालने में जुटे हैं। सारी रात बीत गई। अब क्या-क्या होगा ? मैंने तो घड़ी भी उतार कर डाक्टर कोहली के कमरे में रख दी थी। ...यार वह कहीं चले तो नहीं गये ?"

"नहीं, भई। वह बेचारे कहाँ जायेंगे ? उस तरफ़ से सामान उठवा रहे हैं।....मैंने भी घड़ी उतार दी थी। डैम्पप्रूफ़ नहीं थी न ! झगड़ू, भला क्या बजा होगा !"

"हम समझते हैं, कि आठ तो बज ही गया होगा, भइया," झगड़ू बोला, "आप लोग चाय तो पी लें एक-एक प्याली। हम अभी लाते हैं।"

"हाँ, लाओ, भई ! दिमाग़ ठप हो गया," नरेन्द्र ने कहा। फिर मुड़ कर प्रकाश से बोला—"प्रकाश, तुम इस निचली आलमारी में से एसिड की शीशियाँ उठाओ। मगर एक-एक करके उठाना ...बड़ी होशियारी से।....मैं अभी आया। ज़रा निहालसिंह को टेलीफ़ोन कर लूँ। उसे ठीक पता होगा, कि यूनिवर्सिटी और डालीगंज और निशातगंज की तरफ़ पानी का क्या हाल है। इधर से कोई अभी जा नहीं सकता।"

रात भर काम करने से उसका चेहरा ज़र्द हो रहा था। आँखें सुर्ख थीं, बाल उलझे हुए थे। पतलून को घुटने तक चढ़ाये, सिर्फ़ एक बनियाइन पहने, हाथ भीगे, पाँव कीचड़ में पुते, वह लगभग दौड़ता हुआ बरामदे की तरफ़ निकला ही था, कि पीछे से डाक्टर कोहली की आवाज़ आई—"नरेन्द्र, यहाँ आओ....जल्दी।"

वह रुक गया। अब क्या करे ? अगर दस मिनट की भी मोहलत होती, तो वह आर्ट कॉलेज फोन करके पूछता, कि बनर्जी साहब के साथ कौन-कौन हैं, नीता भी है कि नहीं। और अगर निहालसिंह मिल जाता और उससे एक मिनट बात हो जाती तो यह पता लग जाता कि

दरिया में पानी बढ़ रहा है, कि घट रहा है, कि रुक गया है, कहाँ कितना पानी है । मगर डाक्टर कोहली की आवाज़ की घबराहट और परेशानी महसूस करके, वह उलटे पाँव दौड़ा, और बोला—"यस, सर !"

डाक्टर कोहली भी उसी की तरह घुटनों तक पतलून चढ़ाये लौट चुके थे । नरेन्द्र को आवाज़ देते ही वह दूसरी तरफ़ दौड़ने लगे । नरेन्द्र उनके पीछे भागा । "यस, सर !"

वह दौड़ते हुए बोले—"नरेन्द्र, जानवरों वाले तहखाने की दीवार बैठ गई । पानी अन्दर आ रहा है । बड़े एनीमलहाउस में भी पानी आ रहा है । फ़ौरन जानवरों को निकालना है ।....तुम लोग कितने लड़के हो ?"

"पाँच-छः हैं, सर !"

"पाँच-छः से क्या होगा ? अच्छा, मैं भी आता हूँ ।"

"नहीं-नहीं । आप यहाँ बाहर रहें और लड़कों को आवाज़ दीजिये । मैं अन्दर जाता हूँ ।" और वह पलक झपकते में तहखाने के अन्दर उतर गया । वहाँ की बिजली ऑफ़ हो चुकी थी । मगर एक तरफ़ से दीवार के गिरने से सुबह की हल्की-हल्की रोशनी अन्दर आ रही थी । दीवार का एक हिस्सा बैठ चुका था ।

यकायक डाक्टर टंडन की आवाज़ आई—"रबर की चप्पल बिना कोई अन्दर न उतरे । पानी में करेन्ट है ।"

तीन-चार लड़के, जो रबर की चप्पलें पहने थे, अन्दर घुस गये । नरेन्द्र भी रबर की चप्पल पहने था । जल्दी-जल्दी अन्दर वाले लड़कों ने पिंजरे उठा-उठा कर बाहर बढ़ाने शुरू कर दिये । बाहर जो लड़के खड़े थे, उन्होंने दौड़-दौड़कर सब पिंजरे बरामदे में रखने शुरू कर दिये । पौन-घण्टे की सख़्त मेहनत के बाद पूरा तहखाना ख़ाली हो गया । मगर ख़ाली होते-होते भी उसमें लगभग घुटने तक पानी भर गया ।

नरेन्द्र बाहर निकल कर फिर टेलीफोन की तरफ़ चला ही था, कि सामने से झगड़ू एक बड़ी-सी केतली में चाय और उँगलियों में बहुत-

सी प्यालियाँ फँसाये आता दिखाई दिया। "भइया अरे मेरे भइया! ....एक प्याली चाय पी लो।"

नरेन्द्र रुक गया, झगड़ू के पीछे-पीछे डाक्टर कोहली के कमरे में गया। उनकी मेज़ पर से अपनी घड़ी उठाई और बाँधने का इरादा किया। मग़र फिर न जाने क्या सोच कर घड़ी उनकी दराज़ में रख दी। झगड़ू ने मेज़ पर प्यालियाँ रखीं, और केतली में से चाय भरता हुआ बोला, "हम लोगों से तो ई ससुर बन्दर अच्छे! क्या मजे में पिंजरन में बन्द हैं। और आप लोग पिंजड़े उठायें, बड़े घरों के लाड़ों के पले बच्चे! क्या भगवान की लीला है!"

बरामदे में जानवरों ने ऊधम मचा रखा था। चूहे, ख़रगोश, गिनी-पिग, बन्दर, सब बदहवास होकर चीख रहे थे।

नरेन्द्र जल्दी से चाय पीकर फिर टेलीफ़ोन के पास दौड़ा। उस पर दो-तीन लोग और जुटे थे। जब सब कर चुके तो उसने टेलीफ़ोन किया। अमीनाबाद की एक दुकान का नम्बर मिला। "हलो! ...ज़रा कोठे पर से निहालसिंह इंजीनियर की माँ को बुला दीजिये।"

ज़रा देर बाद उधर से लाजवन्ती देवी की आवाज़ आई, "हलो! कौन है?"

"आन्टी, मैं हूँ नरेन्द्र।....निहाल है?"

"नहीं, भइया। मैं तो समझी, कि उसी का टेलीफ़ोन है। तुम्हीं कुछ बताओ। तुम से नहीं मिला?"

"जी नहीं। मैं तो कल दोपहर से यहीं हूँ। यहाँ से सब सामान इधर-उधर किया जा रहा है। पानी के मारे। सो उसी में लगा हुआ हूँ।"

"तो, भइया, वह भी तो कल दोपहर ही से गया है। मुझ से तो कह कर गया था, कि 'गऊ घाट जा रहा हूँ। आपको फ़ोन कर दूंगा।' पर अभी किसी और ने फ़ोन किया था कि गऊ घाट के सब रास्ते बन्द हो गये हैं, और कुछ इंजीनियर और मजदूर और मिस्त्री, जो वहाँ

थे, वहीं फँस गए हैं। फिर वह यह भी बता रहे थे कि कुछ इंजीनियरों की ड्यूटी कल डालीगंज पर लगा दी गई थी।....पता नहीं मेरा बच्चा कहाँ है। कुछ ऐसी ही मजबूरी होगी, वरना वह मुझे ज़रूर फ़ोन करता।" उनकी आवाज़ रुँध गई।

"आप घबराइये नहीं, आन्टी। मैं पता लगाता हूँ। जैसे ही कुछ मालूम होगा, आप को फ़ोन कर दूँगा। आपको कुछ पता है, यूनिवर्सिटी की तरफ़ क्या हाल है?"

"हाँ भइया। जिन्होंने फोन किया था, वह बता रहे थे कि डालीगंज वाला पुल आधा गिर गया है और उस पर भी कुछ लोग फँस गये है। और यह तो मैंने कल शाम ही को सुना था, कि मिलिटरी लग गई है।"

नरेन्द्र ने टेलीफ़ोन बन्द किया और आर्ट कॉलेज से मिलाना चाहा। कोई जवाब नहीं मिला, न घन्टी ही बजी। फिर क्या, फिर वही कैफ़ियत। उसने टेलीफ़ोन रखा ही था, कि एक मोटर तेज़ी के साथ आकर पार्क में रुकी। नरेन्द्र ने झाँक कर देखा—डाक्टर सहाय थे। वह उतर कर, सीधे टेलीफ़ोन की तरफ़ आये। उन्हें भी शायद जल्दी में कहीं फ़ोन करना था। बोले, "नरेन्द्र, कहाँ फ़ोन कर रहे हो बेटे?"

"जी, आर्ट कॉलेज।"

"आर्ट कॉलेज में तमाम पानी भरा हुआ है। वहाँ भी बिजली, टेलीफ़ोन सब ठप पड़े हैं। अभी-अभी मिस्टर बनर्जी और उनके कुछ लड़के और लड़कियाँ वापस आये हैं। मैं उनसे हज़रतगंज में मिल कर आ रहा हूँ। सुबह से तो वह लोग वहाँ से समान निकाल रहे थे। मगर इस वक़्त मिलिटरी ने उनको हट जाने का हुक्म दे दिया, क्योंकि अब पानी इतना तेज़ है कि मामूली किश्ती चल नहीं सकती, और मोटर-बोटें इन लोगों को मिली ही नहीं। बस दो मोटर-बोटें आई हैं, और न जाने कहाँ हैं।" फिर ज़रा रुक कर बोले, "मगर नीता उन लोगों के साथ नहीं थी। उसकी तबीयत कुछ खराब थी....बनर्जी साहब बता

रहे थे, कि वह आना भी चाहती थी, मगर उन्होंने मना कर दिया। घर पर ही है वह।"

"तो ये लोग हज़रतगंज में हैं ?"

"हाँ थे। अब तो शायद न होंगे। बनर्जी साहब से एक लड़का अपने घर चलने को कह रहा था। वह बहुत परेशान थे। अब तो वहाँ से जा ही चुके होंगे।"

नरेन्द्र ने टेलीफ़ोन छोड़ दिया, और थके-थके क़दमों से आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ, डाक्टर कोहली के कमरे की तरफ लौटा। उसने कमरे का दरवाज़ा खोला, तो ऐसा महसूस हुआ कि मेज़, कुर्सियाँ, आलमारियाँ, सब नाच रही हैं, छत ऊपर-नीचे हो रही है। फिर जैसे किसी ने उसको एकदम झिझोंड़ डाला। दूर कहीं से झगड़ू की आवाज़ आ रही थी—"भइया ! अरे भइया !....अभी-अभी किसी ने टेलीफ़ोन किया है कि सिकन्दर बाग़ वाला बाँध फट गया।"

नरेन्द्र की नज़र एकदम दीवार-घड़ी पर गई। नौ बजकर दस मिनट। उसके कानों में अपने दोस्त निहालसिंह की बात गूँजने लगी—'अगर चार-पाँच दिन गोमती में यही बहाव रहा, तो यह बाँध जवाब दे जायेगा।'

अगर यह सच है कि सिकन्दर बाग़ वाला बाँध टूट गया है, तो वज़ीर हसन रोड, गोखले मार्ग, राममोहन राय मार्ग सब पर पानी होगा। कितना पानी होगा, कौन जाने ? न मालूम बाँध टूटने से कितना पानी आता है, कैसे आता है, क्या होता है।

बाहर डाक्टर सहाय की मोटर स्टार्ट होने की आवाज़ आई। नरेन्द्र दौड़ता हुआ कमरे से निकला। "डाक्टर साहब, रुक जाइये। मैं भी आपके साथ चलूँगा।"

डाक्टर सहाय ने मोटर रोक ली। नरेन्द्र ने पतलून नीची की। टेलीफ़ोन पर जाकर उसने नीता का नम्बर मिलाया। कोई आवाज़ नहीं। जैसे उसकी जान निकल चुकी हो। फिर मिलाया। फिर कोई

आवाज़ नहीं। तो इसके मानी यह थे, कि वहाँ के टेलीफ़ोन भी कट चुके थे।

मोटर हज़रतगंज की तरफ़ चलने लगी। मेफ़ेयर से सड़क करीब डेढ़ फ़ीट पानी में डूबी हुई थी। कॉफ़ी हाउस के सामने ढाई फ़ीट के करीब पानी था। मोटर उसमें से आहिस्ता-आहिस्ता चलती हुई फ़ाटोग्राफ़र सी० मल की दुकान के सामने पहुँची, तो वहाँ पाली कम हो गया था। फिर वह आगे बढ़ कर निशातगंज जाने वाली सड़क पर चलती हुई सिकन्दर बाग़ के चौराहे पर पहुँची थी, कि रोक दी गई। चौराहा यूँ मालूम होता था, जैसे दरिया का किनारा। पुलिस, मिलिटरी और लोगों की ऐसी भीड़ थी, कि तिल धरने की जगह न थी। अभी तक अंदर न कोई किश्ती गई थी, न मोटर-बोट। अलवत्ता कुछ तैराकों ने कुछ लोगों को निकाला था, जिनमें कई बच्चे थे। जैसे ही इन लोगों की मोटर रुकी, एक पुलिस अफ़सर ने डाक्टर सहाय को पहचाना। दौड़ता हुआ वह इनकी मोटर तक आया, और घबराया हुआ बोला—"डाक्टर साहब, आपके पास बैग है ?"

"हाँ-हाँ, है।"

"तो जल्दी सामने की उस कोठी में जो कैम्प है, वहाँ चले जाइये। एक औरत के बच्चा हो गया है। वह मर जायेगी। और तीन बच्चे हैं, जिनको मेडिकल एड की ज़रूरत है।"

नरेन्द्र उतर गया। डाक्टर साहब ने मोटर फेरी। नरेन्द्र खिड़की से झाँक कर बोला, "डाक्टर साहब, आप जाइये। मैं तो ज़रा अभी यहीं रहूँगा।"

डाक्टर साहब चले गए।

नरेन्द्र पानी के किनारे पहुँचा। एक मिलिटरी अफ़सर से बोला—"क्यों साहब, अंदर जाने का कोई इंतज़ाम है ?"

"अभी कोई इंतज़ाम नहीं है। हम लोग अभी ही तो यहाँ पहुँचे हैं। हमारी ड्यूटी तो हुसैनाबाद में थी। यह बाँध तो यकायक फट

गया। जब मोटर-बोटें हम लोगों को मिलें, तो कुछ पता चले, अभी कोई अंदर नहीं जा सकता। हद है, साहब! इतने दिनों से इन लोगों की समझ में नहीं आया, कि यह बाँध टूट जायेगा।"

दो-चार मिनट परेशान खड़े रह कर सोचने के बाद नरेन्द्र ने यह फ़ैसला किया, कि वापस ड्रगरिसर्च चलना चाहिये। इस तरह बेकार खड़े रह कर परेशान होकर सोचते रहने से तो यही बेहतर है, कि वहाँ जाकर अपने साथियों की मदद की जाये, न जाने वहाँ क्या हो रहा हो।

आहिस्ता-आहिस्ता वह ड्रगरिसर्च की तरफ़ कदम बढ़ाने लगा।

१२

शाम के पाँच बजे के बाद नरेन्द्र क्लाइड रोड़ और सिकन्दर बाग़ के चौराहे पर पहुँचा। वहाँ अभी तक उतनी ही भीड़ थी। मगर अब मिलिटरी के कैम्प लग गये थे। बनारस से आई हुई किश्तियाँ और तैराक बराबर अंदर आ-जा रहे थे। यों मोटर-बोटें भी थीं और बहुत-से नौजवान लोग वालंटियरों का बिल्ला लगाये, लोगों को किश्तियों से उतार-उतार कर कैम्पों में ले जा रहे थे। एक लम्बी-सी बस और यों प्राइवेट कैरियर भी खड़े थे। रोना-पीटना, चिल्लाना और हुल्लड़ ज़ोरों पर था।

बड़ी दौड़-भाग के बाद नरेन्द्र को एक मिलिटरी-किश्ती में अंदर जाने की इजाज़त मिली।

कमज़ोर-सा सूरज पश्चिम में डूब चुका था। अँधेरा बढ़ रहा था। पानी, जो मटियाला था, अब काला दिखाई दे रहा था। तमाम रोश-

नियाँ गुल थीं। मकानों की ऊपर की मंज़िलें पानी पर तैरते हुए जहाज़ों की तरह लग रही थीं। टिमटिमाते हुए चिराग़ों और मद्धिम जलती हुई लालटेनों की रोशनी में ऊपर की मंज़िलों पर खड़े हुए लोग जादू के जहाज़ों में सफ़र करते हुए भूत मालूम हो रहे थे। पानी की साँय-साँय के साथ मोटर-बोटों के इंजनों की आवाज़ आ रही थी। बाँध के पास वाली सड़क पानी से ऊपर उठी हुई थी और खुश्क थी, मगर उसके नीचे पन्द्रह-बीस फीट गहरा पानी भरा था। और ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर बसेरा लेने वाली चिड़ियाँ झुटपुटे के सुरमई वातावरण में पेड़ों की चोटियों पर चक्कर काट रही थीं। पानी में जा-बजा तार और टेली-फ़ोन के खंभे औंधे-सीधे खड़े थे। दो तारों के बीच में एक मरी हुई चमगादड़ उल्टी लटकी हुई थी। दूर से सत्यआश्रम में लगे एक पुराने पेड़ पर से उल्लू की आवाज़ बार-बार सुनाई दे रही थी।

नरेन्द्र ने नीता के घर की बाहरी दीवार के पास किश्ती रुकवाई, और ज़ोर से आवाज़ दी—"नीता !....चाची !....नीता !" कोई जवाब नहीं मिला।

फिर एक और किश्ती आई। उसमें बैठे कुछ नौजवान पीने का पानी बाँट रहे थे। उनमें से एक पुकार कर बोला—"साहब, इस घर के लोग तो निकाल लिये गये हैं।"

"कहाँ गये वह लोग ?"

"अब यह तो हमें नहीं मालूम। किसी कैम्प में पहुँचाये गये होंगे, या फिर शहर चले गये होंगे। वहाँ पूछिये किनारे पर, जहाँ मिलिटरी का कैम्प लगा है।"

फिर तीन-चार किश्तियाँ और आ गईं। सब पर नारंगी रंग का झंडा लगा था, जिस पर दीपक बना था। नरेन्द्र को बड़ा अजीब लगा। "यह खाना, पानी और मिट्टी का तेल बाँटने के लिये आखिर झंडा लगाने की क्या ज़रूरत थी ?"

किश्ती में बैठा हुआ एक फ़ौजी बोला—"ज़रूरत क्यों नहीं थी,

जनाब ? कुछ ही महीनों के बाद तो एलेक्शन है।"

नरेन्द्र ने किश्ती घुमाने को कहा। घुमाव लेते ही किश्ती खट-से किसी चीज़ से टकराई। कप्तान बोला—"अरे भाई, रुक कर, ज़रा सँभल कर। यहाँ तमाम चहारदीवारों के मलवे पड़े हैं। होशियारी से।"

ड्राइवर ने किश्ती को फेरा ही था, कि अशोक के एक बड़े-से पेड़ पर से कोई चीज़ पट-से किश्ती पर और फिर पानी में गिरी।

"अरे, साँप।....साँप !"

सब्ज़ रंग का लम्बा-सा साँप पानी में लहराता हुआ तेज़ी से निकल गया। किश्ती की नोक पर बैठा हुआ एक तैराक लड़का, जो बनारस से आया था, ज़ोर से हँसने लगा। "साँप ससुर अस घबरान कि काटै का भूल गा !"

नरेन्द्र किश्ती के एक किनारे बैठा, सोच रहा था— 'अगर नीता और चाची शहर गयीं, तो भला किस के यहाँ गई होंगी ? न जाने क्या गुज़री ? कैसे गयी, कहाँ गयी ? हो सकता है, कि नवाब चचा के यहाँ, मगर....निहालसिंह कहाँ है ? डाक्टर सहाय किस कैम्प में भेजे गये ? शीशमहल, हुसैनाबाद, सभी पानी में डूबे हुए हैं। डालीगंज से भी तो सुना है कि लोग निकाले जा रहे हैं। डायरमीकिन में तमाम पानी आ गया है।'

इतने में आसमान पर गड़गड़ाहट हुई। किश्ती के ड्राइवर ने एक पल को ऊपर देखा। आहिस्ता से बोला, "जो लोग पानी में फँसे हुए हैं, उनके लिये ऊपर से खाना फेंकने के वास्ते हेलीकॉप्टर देहली से मँगवाये गये हैं।"

किश्ती की नोक पर बैठा हुआ लड़का बोला—"उँह ! ई की कौन ज़रूरत रही ?....अरे, कौन-सी अस ससुर जगह होय, जहाँ हम लोगन नहीं जाय सकित ? कहो, तो अबई गोमती जी की बीच धारा माँ कूद के दिखा देई।"

"अबे, धारा से क्या मतलब ?" सिपाही बोला—"सरकार तो

रोब चाहती है रोब। लोग समझें, कि हाँ भई, हवाई जहाज में खाना फेंकवा रही है सरकार, चाहे लोगों तक पहुँचे कुछ भी नहीं। अब पूछिये कि जो हज़ारों रुपये का पेट्रोल खा रहे हैं ये हवाई जहाज़, तो किस काम के लिये ?....यही रुपया बाढ़-पीड़ित लोगों के काम आता। अबे, देख तो, यहाँ क्या है ?"

लड़का छलाँग मार कर पानी में कूद गया, और तैरता हुआ गाने लगा। नरेन्द्र उसे ग़ौर से देख रहा था। जहाँ कहीं किश्ती चलाने वाले को जरा गड़बड़ी नज़र आती, वह लड़के को इशारा करता और लड़का, जिसका रंग और जिस्म बिलकुल मछली की तरह स्याह और सुडौल था, गड़ाप-से पानी में कूद जाता, और आगे-आगे तैरता जाता, और इशारा करता जाता। "ले आओ।....ले आओ।"

किनारे पर पहुँच कर, नरेन्द्र को मालूम हुआ, कि क्रिश्चियन कालेज में सबसे बड़ा कैम्प लगा है।

क्रिश्चियन कालेज के अहाते में आदमी-ही-आदमी दिखाई दे रहे थे। शहर के बाढ़-पीड़ित हिस्सों से निकाले हुए लोगों का सब से बड़ा कैम्प यहीं था। वैसे तो शहर के जितने हिस्से ऊँचाई पर थे, सभी पर जगह-जगह छोटे-छोटे कैम्प थे। हज़रतगंज का म्युनिसिपल दवाखाना, आई० टी० कालेज, अमीनाबाद की तमाम धर्मशाला और स्कूल, सभी मुसाफ़िरखाने बन गये थे। जगह-जगह से बसें और ट्रकें आतीं, लोगों को कैम्पों में उतारतीं, और फिर और लोगों को लेने के लिये चली जातीं। जहाँ-जहाँ से लोग हटाये जा रहे थे, वहाँ भी कैम्पों का-सा दृश्य था। अब सारा इन्तज़ाम मिलिटरी के हाथ में था। खेमों में फ़ौजी बैठे, हर बचाये जाने वाले का नाम-पता लिखते, कैम्प की मोहर लगाते, और लोगों को ट्रकों में सवार करवाते वक़्त उनके परचे बाँटते। किनारों से मोटर-बोटें और किश्तियाँ, जो बनारस से आई थीं, बराबर पानी से भरे हुए हिस्सों के अन्दर जा रही थीं, आ रही थीं। अभी तक हर जगह बहुत से लोग घिरे हुए थे, जिनको पीने का पानी, खाने का

सामान, लालटेन, मिट्टी का तेल तथा ज़रूरत की और चीजें पहुँचाई जा रही थीं।

नरेन्द्र अहाते में दाखिल हुआ, इधर-उधर देखने लगा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, कि किस टोली में ढूंढ़े, किस से पूछे, कि तभी लोगों से भरी हुई एक ट्रक फाटक से दाखिल हुई, और ज़ोर से हार्न बजाया। नरेन्द्र उछल कर एक तरफ़ हो गया। ट्रक आगे जाकर रुक गई। एक फ़ौजी उसमें से कूद कर उतरा, और सामने लगे हुए खेमे की तरफ़ दौड़ते हुए ट्रक चलाने वाले को हाथ हिला-हिला कर इशारा करने लगा। "ले आओ !....ले आओ !" ट्रक उसके पीछे-पीछे चलने लगी। नरेन्द्र समझ गया, कि इसी खेमे में इन्तज़ाम करने वाले होंगे। वह उधर चला ही था, कि किसी ने उसका दामन खींचा। "हुज़ूर, कुछ दिये जाइये। सारा घर पानी में डूब गया, सरकार ! छोटे-छोटे बच्चे हैं। कल से खील उड़ के मुँह में नहीं गई। बाढ़पीड़ित हूँ, गरीबपरवर ! कुछ मदद हो जाये।"

पास ही जमादारनियों की एक टोली बैठी थी। उसमें से एक हाथ नचाकर, चूड़ियाँ बजाकर बोली—"अरे भोला, अरे तेरा घर कहाँ से डूब गया ? तू तो अमीनाबाद में रहता है न ?"

भोला ने उसे घूर के देखा। "चुप रह, तू कौन होती है बीच में बोलने वाली ? तू क्या मेरी घरवाली है, जो मेरा घर जानती है !"

जमादारनियाँ ठठा कर हँसने लगीं। भोला उस औरत को खा जाने वाली नज़रों से घूरता हुआ जाने ही वाला था, कि नरेन्द्र ने उससे पूछा—"क्यों, भोला, यहाँ वज़ीर हसन रोड से कुछ लोग आये हैं ?"

"ज़रूर आये होंगे, सरकार। वह उधर लाडले मियाँ बैठे हैं। वह ज़रूर जानते होंगे। आप मेरे साथ आइये। यह तो हरामज़ादी है। दिन को लँगर की रोटी खाये, रात को हवाई जहाज़ की कमाई करे।....आप मेरे साथ आइये।"

नरेन्द्र कुछ ही कदम चला होगा कि डुगडुगी की आवाज़ आने आने लगी। एक बन्दर वाला ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था—"चाहे पानी आये, चाहे बहिया आये, मेरा शेरा ससुराल जाये ! हाँ, बेटा बता तो कैसे ससुराल जायेगा, जोरू के लिए कैसे पानी भरके लायेगा।....डुग-डुग—डुगा-डुग। डुग-डुग-डुगा-डुग।....अरे, मत रूठो रानी। मान जाओ, चमेली जान, लखनऊ की बेगम, इन्द्र-सभा की लाल परी !.... मान जाओ ! डुग-डुग...."

बँदरिया लाल लहँगा पहने, लाल गोटा लगी लहरी को दोनों हाथों से कँधों पर सम्भाले, पाँव के घुंघरू बजाती, आँखें उल्टी-सीधी करती, कभी-कभी दाँत निपोर कर छमाछम नाच रही थी। ज़रा-सी दूर पर एक साँवला खूबसूरत लड़का उलझे-उलझे बाल लिये, सफेद धोती-कुर्ता पहने, जमीन पर आलथी-पालथी मारे, सामने एक पटरे पर कागज लगाये, हाथ में लम्बी-सी पैंसिल लिये, जल्दी-जल्दी एक फिल्मी तस्वीर बना रहा था। उस लड़के से थोड़ी दूर पर एक औरत पूरे दिन का पेट लिए, ज़मीन पर पाँव फैलाये बैठी, एक नन्हें से बच्चे और एक ज़रा बड़ी लड़की को रोटी तोड़-तोड़ कर खिला रही थी, और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाये जा रही थी—"लाडले साहब ! अरे सर-कार, मेरे घरवाले का कुछ पता चला ? वह जो कोई भी था, खुदा उसकी माँ का कलेजा ठंडा रखे। मुझे पीठ पर बिठाया, मेरे दोनों बच्चों को अपनी छाती से बाँधा, और तैर कर हमें किनारे पर पहुँ-चाया। हमारी सारी गृहस्थी बह गई। वह बेचारा कह रहा था, हजूर कि, 'हम लोगों ने बड़े लोगों से कितना-कितना कहा कि यह बाँध टूटेगा, पर न किसी इंजीनियर ने सुना, न किसी मिनिस्टर ने। इनका नाकस जाये, इनको बहिया ले जाये !....हाय, मेरा लेहाफ भी बह गया ! अब जाड़ा कैसे कटेगा ? लाडले साहब, मेरा घरवाला मिला ?"

लाडले साहब एक बड़ी-सी टोली के बीच में खड़े डालीगंज का

पुल टूटने का क़िस्सा बयान कर रहे थे—"अरे मियाँ, आधा पुल लटका हुआ, यानी कि हवा में झूलता हुआ, और आधा दरिया के अन्दर। और गोमती की यह दशा कि मुआज़ अल्लाह ! पागलों की तरह पुल के खम्भों से सर टकराती थी, कि जैसे कोई आशिके मजनूँ। और टूटे हुए पुल के किनारे पर सैकड़ों ही आदमी...."

"पर इतने आदमी वहाँ थे क्यों ?" किसी ने पूछा।

"अरे साहब, पार उतर रहे थे, कि इत्ते में पुल जवाब दे गया। वह तो कहिये कि जब गिरा है पुल, तो कोई उस जगह पर नहीं था, जहाँ से टूटा—"

"मगर सुना तो है, कि सब लोग बचा लिये गये ?"

"वही तो अर्ज़ कर रहा हूँ।....अगर न होती लखनऊ की पतंगबाज़ी, तो इतने आदमी मर ही गये थे।"

लोग उनकी तरफ़ दिलचस्पी से देख रहे थे। सुनने वालों का मजमा बढ़ रहा था ? "आप लोग तो जानते हैं, कि लखनऊ में पतंगबाज जहाँ चाहते हैं, पतंग उतार देते हैं। चुनाँचे सैकड़ों पतंगें ऐन उसी जगह उतार दी गयीं, जो टूटे हुए सिरों के बीच में थी, और लोगों ने उन्हें पकड़ लिया। उन पतंगों में कन्ने पर तो बँधा था माँझा, फिर रील का मोटा धागा। फिर ट्वाइन, फिर सूती डोरी, फिर सुतली, फिर रस्सी, और उसके बाद रस्सा। तो, जनाब, लोगों ने आहिस्ता-आहिस्ता पतंगों को खींचा, फिर डोरी, सुतली, रस्सी, और फिर रस्से को पुल के खम्भों में बाँध दिया गया और उसको पकड़-पकड़ कर जनाजन-जनाजन नीचे आ गये। नीचे किश्तियाँ थीं, कप्तान लोग थे। बस उन लोगों ने सँभाल-सँभाल कर उतार लिया। ....क्या दृश्य था, साहब ! सूरज डूब रहा था, गोमती के पानी पर। और पुल से बँधे हुए सैकड़ों रस्से। और उन पर से लोग ऐसे फिसल रहे हैं, कि बस अर्श से फ़र्श तलक नूर नज़र आता है। चमत्कार था, साहब, चमत्कार !"

"मगर आप क्या वहाँ थे?" किसी ने पूछा —"मैंने तो कल मग़रिब के वक़्त आपको टुँडे के यहाँ से कबाब खरीदते देखा था।"

"अमाँ, तो शाम क्या मिनट भर की होती है ?" लाडले साहब बिगड़ कर बोले—"आइये साहब, यह देख लीजिये फ़ेहरिस्त।" —उन्होंने फ़ेहरिस्त में से कुछ मुहल्ले देखे। फिर बोले —"अब यह देख लीजिये इन्तज़ाम, कि देहली से परवाना हवाई जहाज़ मँगवाया गया है। लोगों के लिये खाना फेंकने को। और वह दस बंडल फेंकता है, तो नौ पानी में जाते हैं।....और खाना क्या है। चने मुरमुरे !....तो आप ?" वह फिर नरेन्द्र से मुखातिब हुए।

नरेन्द्र बोला —"जी, मैं अपने कुछ अजीज़ों को ढूंढ़ रहा हूँ। वज़ीर हसन रोड से तो लोग यहाँ नहीं लाये गये हैं -सिन्हा साहब के खानदान की औरतें।"

लाडले साहब जरा चौकन्ने हुए। "कौन सिन्हा साहब....कुँअर श्याम नरायन के बेटे ? वह यूनिवर्सिटी....अरे, साहब, श्याम नरायन सिन्हा क्या शेर कहते थे ! मैंने तो अपने लड़कपन में उनको सुना था। नहीं, साहब, वह खानदानी लोग यहाँ कहाँ होंगे ? यह तो ऐसे ही कैम्प हैं।"

नरेन्द्र जरा झुँझला के बोला—"साहब, इस वक़्त बड़े-बड़े खानदानी बह गये। आप यह सब रहने दीजिये। बस यह बता दीजिये, कि अगर आप को मालूम हो तो, कि वज़ीर हसन रोड के लोग यहाँ लाये गये हैं कि नहीं।"

"आइये-आइये। कप्तान साहब से पूछता हूँ।" वह अरज़ का पाजामा लहकारते, चिकन का कुरता फटकारते फौजी कैम्प की तरफ़ बढ़े। नरेन्द्र उनके पीछे हो लिया।

रास्ते में एक जगह बड़ी भीड़ थी। एक साधु किस्म के साहब, गेरुवा कपड़े पहने, भाषण दे रहे थे—"सज्जनो, देवियो, माओ, बहनो ! यह सब हमारे कर्मों का फल है। हमारे पाप इतने बढ़ गये हैं कि

आकाश फूट बहा। हम दान-पुण्य भूल गये। हम ने पूजा-पाठ छोड़ दिया। कन्याएँ फ़ैशन करती हैं। लज्जा नाम को नहीं। लड़का बाप की बात नहीं मानता। उलटी गंगा बह रही है। तभी भगवान ने यह किया। प्रायश्चित्त करो, प्रायश्चित्त। दान-पुण्य करो, पूजा-पाठ करो। हरि ओम्! सीता-राम!...."

उनके सामने एक बड़ा-सा गेरुवे रंग का रूमाल बिछा था, जिस पर बहुत-से पैसे पड़े हुए थे। और चारों तरफ़ जो लोग इकट्ठे थे, उनमें ज़्यादातर औरतें थीं।

लाडले साहब चलते-चलते बोले—"मियाँ, बात तो यह वाक़ई ठीक है, कि ऐसा पानी न कभी देखा, न सुना। यह बारिश नहीं है, यह तो क़हरे-इलाही है।....और यह होगा ज़रूर, कि जब इन्सान खुदा के कामों में दखल देगा, तो फिर क़ुदरत को वह नागवार गुज़रेगा ही। हज़ारों साल से ये दरिया बह रहे हैं। अब जो उनको जगह-जगह से काटोगे, तो वह तो तड़पेंगे ज़रूर।....सुनते हैं, कि सीतापुर में पानी कभी बन्द करते हैं, कभी खोलते हैं।....जी हाँ, यही है फ़ौजी कैम्प। आप कप्तान साहब से इंगलिश में बात कर लें।"

नरेन्द्र को कैम्प से बस इतना पता चला, कि वज़ीर हसन रोड पर के लोग ग़ालिबन चारबाग कैम्प में भेजे गये हैं। मगर इस बात का यक़ीन करने के लिये ज़रूरी है, कि वह क्लाइड रोड के चौराहे पर जो फ़ौजी इन्तज़ामात हैं, वहाँ से दरयाफ़्त करें।

क्लाइड रोड के चौराहे पर बड़ी भीड़ थी। नरेन्द्र लाइन में खड़ा हुआ। बड़ी देर के बाद जब अपनी बारी आने पर उसने सिन्हा साहब और नीता का नाम बताया और पूछा, कि वह लोग किस कैम्प में हैं, तो उसे बताया गया कि उनको मिलिटरी दूसरे खेमे में ले गई। यहाँ तो सिर्फ़ वह लोग अपने नाम लिखवा रहे हैं, जो अभी पानी से निकाल कर बाहर लाये गये हैं। वह दूसरे खेमे में पहुँचा। यहाँ लाइन और भी बड़ी थी। इस इलाके में रहने वाले सभी लोगों के अज़ीज़

रिश्तेदार जगह-जगह से आये हुए थे, और पूछ-ताछ कर रहे थे। बड़ी देर बाद उसे पता चला, कि नीता और उसकी चाची चारबाग कैम्प ही भेजे गये हैं। उसे यह भी पता चला, कि उन लोगों को लेने के लिये शहर से कुछ दोस्त आये थे, मगर नीता ने उनके साथ जाने से इन्कार कर दिया, और जहाँ वज़ीर हसन रोड के और लोग ले जाये जा रहे थे, वहीं चली गई।

नरेन्द्र मुसाफ़िरों से भरे हुए एक ट्रक के बाहर वाले तख्ते को पकड़ कर सड़क पर खड़ा हो गया। वह चारबाग ही जा रही थी। गोखले मार्ग के बहुत से लोग उसमें भरे थे।

जब ट्रक कैम्प पहुँची, तो स्टेशन की घड़ी ग्यारह बजा रही थी। लेकिन कैम्प में दिन मालूम हो रहा था। यहाँ सड़क की रोशनियाँ भी जल रही थीं, और जगह-जगह लालटेनें और हन्डे भी थे। लेकिन असल रोशनी आग की थी—आग जो खाना पकाने के लिये जलाई गई थी। सुबह से यहां लोग लाये जा रहे थे। और अब इतना इन्तज़ाम हो गया था, कि खाना पक रहा था। मगर यहाँ एक बड़ी मुश्किल यह थी, कि छोटे-छोटे सैकड़ों खेमे थे। नरेन्द्र एक-एक खेमे में झाँकता। आवाज़ लगाता –"नीता !"

जवाब मिलता—"यहाँ कोई नीता नहीं है।"

दूसरे के पास जाकर आवाज़ देता—"वज़ीर हसन रोड की नीता !"

"हम लोग राय प्रयागनारायण रोड से आये हैं।"

यहाँ तक कि वह बिलकुल परले सिरे पर पहुँच गया, जहाँ से नुमाइश की पुरानी टीन वाली दीवार शुरू हुई थी। उसके पाँव मन-मन भर के हो रहे थे। जिस्म पर जगह-जगह कीचड़ लगी थी। जूते भी तमाम कीचड़ से पुते थे। बाल उलझे थे। कपड़े गन्दे थे। वह कई रातों से सोया नहीं था। दिन भर उसने दो प्याली चाय के अलावा कुछ खाया-पिया नहीं था। और अब रात के आठ बज चुके थे।

कहाँ थी नीता ? सोचती होगी, कि नरेन्द्र ने ख़बर तक नहीं ली। उसे क्या मालूम था कि नरेन्द्र और उसके साथियों ने रात भर काम किया था, दिनभर जुटे रहे थे, तमाम ड्रग-रिसर्च खाली किया था। और अब घंटों से वह उसकी तलाश में मारा-मारा फिर रहा था। किसी को क्या ख़बर थी, कि काठ के पुल वाला बाँध यूँ फट जायेगा, और तीन-चार मील का इलाक़ा दस मिनट के अन्दर-अन्दर पद्रंह फ़ीट पानी से भर जायेगा ? नहीं, कुछ लोगों को तो मालूम था। फिर सबको क्यों नहीं मालूम हुआ ? उसे याद आया, कि उसके दोस्त, वह तीनों नौजवान इन्जीनियर कह रहे थे, कि बाँध फटेगा। फिर किसी ने उनकी क्यों नहीं सुनी ? सुनता कौन ? मंत्रीत्व की कुर्सी डाँवाडोल हो रही थी। जिन्हें इस मुसीबत में जनता का शरीके-हाल होना चाहिये था, वह अपनी कुसियाँ बचाने के चक्कर में एक टाँग देहली, एक लखनऊ किये हुए थे। कुछ पानी के डर के मारे सुरक्षित जगहों पर भाग गये थे। और बूढ़े इंजीनियरों और अफ़सरों को यह कहाँ मंजूर था, कि जनता को यह पता चल जाये कि वे ग़लती पर हैं, और नौजवान ठीक बात कह रहे हैं ? यह तो उनकी बड़ी हत्तक होती।

नरेन्द्र का खून खौलने लगा। मालूम नहीं, नीता पर क्या गुज़री, और अब वह किस हाल में है ? वह खड़ा हो गया, और सोचने लगा कि अब क्या किया जाये। इतने में उसके पीछे ही दो बाँसों पर तनी हुई चादर के बने खेमे में से किसी औरत की आवाज़ आने लगी—"अरे, मर जाओ, भगवान करे ? तुम सब-के-सब। यहाँ भी खाना, खाना, खाना !" फिर एक चिमटे का झनाका, और किसी बच्चे के रोने की आवाज़ !

वह चौंक पड़ा। यह तो कुछ रामी की-सी आवाज़ लगती थी—रामी जो नीता के क्वार्टर में रहती थी, और हर वक़्त नीता का काम-काज किया करती थी। उसने एकदम पलट कर उसमें झाँका। वह

सचमुच ही रामी थी—बिजली के मिस्तरी रामऔतार की बीवी, जिसकी चार नन्हीं-मुन्नी बच्चियाँ थीं।

नरेन्द्र को देख कर रामी ज़ोर से चीखी— 'अरे, कौन झाँक रहा है ?....अरे, अरे भइया ! अरे भइया ! हम लोग तो लुट गये।.....एक दिन पहले भी पता लग जाता तो सामान तो हटा देते। हमारे सारे कपड़े वह गये।....हम अपने उससे कह रहे थे, कि आज राशन न ला, पर वह नहीं माना। और भगवान जाने, कहाँ मर-खप गया।....सारे-का-सारा आटे का बोरा बह गया। और बोरे के नीचे हम ने जो तीन रुपये बचे हुए रख दिये थे, वह भी बह ही गये होंगे।....और भइया, हम लोग मेहनत करने वाले लोग हैं। हमने कभी खैरात की रोटी नहीं खाई, जो अब खानी पड़ रही है।" फिर वह अपनी तीसरी लड़की पर चिमटा ले कर लपकी। "छोड़, रोटी छोड़, नहीं तो जान से मार डालेंगे। भइया, कहीं उसे देखा आप ने ?"

नरेन्द्र सन्नाटे में रह गया। रामी तो बिलकुल पागल हो रही थी।

नरेन्द्र ने आहिस्ता से उसका कन्धा पकड़ा—"रामी, नीता और चाची कहाँ है ?"

वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। "अरे भइया, जिस दिन बाँध फटा, उसी रात तार आया था साहब का कि हम तीन दिन बाद आ रहे हैं।"

नरेन्द्र सिसिया के बोला—"मैं तुझसे साहब की कब पूछ रहा हूँ ?....नीता और चाची कहाँ हैं ?"

"अरे भइया, यहीं थीं अभी-अभी चली गईं। उनके पास कोई खबर लाया, कि डालीगंज में कोई भारी आदमी मर गया। बस, रोती-पीटती चली गयीं। हम ने इतना कहा, कि 'बिटिया, रोटी तो पक गई है। आलू ले आयें।' बस, हम उधर गये आलू लेने, कि अपनी बिटिया को कुछ तो पका के खिला दें। बस, इतने में ही वह चली गयीं। ये लोग सब यहीं थीं। इतना भी नहीं पूछा—कहाँ जा रही हैं।"

"अम्मा, तुम से कह तो रहे हैं, कि डालीगंज गई हैं। तुम सुन ही नहीं रही हो।" बड़ी लड़की बोली।

नरेन्द्र ने जेब से एक-एक रुपये के दो नोट निकाले, और रामी की तरफ़ बढ़ा कर बोला—"रामी, यह रख ले। मैं कल फिर आऊँगा। इस वक़्त नहीं रुक सकता। तू घबराना मत। मैं कल ज़रूर आऊँगा।"

वह दौड़ता हुआ स्टेशन पहुँचा। शटिल गाड़ी रवाना होने के लिए तैयार खड़ी थी। वह लपक कर उसकी एक खिड़की से लटक गया। लखनऊ के दोनों हिस्सों में बस यही एक ताल्लुक़ रह गया था। एक पुल टूट चुका था। दो पुल सवारियों के लिये बन्द हो चुके थे, और उन दोनों पर भी दोनों तरफ़ मिलिटरी लगी थी, जो लोगों को आने-जाने से रोकने की कोशिश कर रही थी। निशातगंज में तमाम नाले उलटे चल रहे थे। और निशातगंज, फैजाबाद रोड, सब बन्द थीं, क्योंकि उन पर तीन-तीन फीट पानी था। शटिल गाड़ी खचाखच भरी थी। जैसे ही नरेन्द्र ने किवाड़ पकड़ा कि रेल रवाना हो गई। अन्दर से किसी ने बड़ी मुश्किल से किवाड़ को थोड़ा-सा अन्दर खींचा। फिर वही साहब बोले—"मियाँ, किसी तरह दब-दबा कर अन्दर आ जाइये। किसी सिगल-विगल से टकरा जाइयेगा। खुदा न ख्वास्ता...., क्या वक़्त है! अल्लाह ही अल्लाह है!"

ट्रेन के पायदान पर चढ़ता हुआ, नरेन्द्र किसी तरह दब-दबाकर ज़रा-सा अन्दर आ गया, और उन साहब के बराबर में खड़ा होता हुआ बोला—"सुबह से अपने अज़ीज़ों को ढूँढ़ रहा हूँ। अभी तक कुछ पता नहीं चला।"

वह साहब अरज का पाजामा, चिकन का कुर्ता और दोपल्ली टोपी पहने थे। रूमाल से आँसू पोंछ कर बोले—"मियाँ, जान की खैर मनाइये। सलामत रहे, तो मिल ही जायेंगे। मगर जो इस खाना-खराब बाढ़ के भेंट चढ़ गया, वह फिर कहाँ मिलेगा?"

नरेन्द्र बोला—"क्यों, क्या बात है? ....आप बड़े परेशान लगते हैं।"

"बात ऐसी-वैसी नहीं है, साहब । कल रात नवाब रज़ा हैदर उर्फ़ पुत्तन साहब का इन्तक़ाल हो गया । मैं भी वहीं जा रहा हूँ । अभी ख़बर मिली है, कि एक पालना बहता जा रहा था । उसमें एक नन्हा-सा बच्चा था । बस, उसी को बचाने के लिये पानी में कूद पड़े । बड़े मशहूर तैराक थे, साहब ! पर वक़्त की बात है । सुना है कि पालना किनारे पर फेंकने में अपने को बचा नहीं सके । उलटे गिरकर नाले के जंगले से टकरा गये । अब देखिये, यह खाना-ख़राब गाड़ी कब पहुँचाती है । सूई की तो चाल चल रही है । देखिये, जनाज़ा भी देखना नसीब होता है कि नहीं । अल्लाह ही अल्लाह है !" और उन्होंने फिर आँसू पोंछे ।

नरेन्द्र की टाँगें लड़खड़ाने लगीं । दिमाग़ चकरा गया । तो नीता और मम्मी वहीं गई होंगी । बड़ी मुश्किल से उसने दरवाज़ा पकड़ के अपने-आप को सँभाला और उन साहब से बोला—"और....वह बच्चा ?"

"सुनते हैं कि बच गया । निरालानगर में जो बच्चों के लिये सरकारी कैम्प बना है फौजियों का, उसमें है ।....हाँ साहब, जिसे खुदा रखे, उसे कौन चक्खे ?"

नवाब साहब की हवेली में घुटनों-घुटनों पानी था, मगर फिर भी लोग उस हवेली को घेरे खड़े थे । शटिल गाड़ी कई घंटे में पहुँची थी । जनाज़ा उठ चुका था, उनके घर के लोग, शहर चले गये थे । अब सिर्फ़ पानी ही पानी था, और वह लोग जो नवाब साहब को चाहते थे और जिनको नवाब साहब चाहते थे । हवेली के पिछवाड़े पाँच-छः नौजवान भीगे कपड़े पहने, कुछ लोगों को किश्तियों में सवार करा रहे थे । कुछ किश्तियाँ अन्दर से लोगों को निकाल कर ला रही थीं । दस-बारह नौजवानों की एक और टोली पर्चियाँ बाँट रही थी । कामनी बेगम एक किश्ती के पास खड़ी, ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी—"मैं कहती हूँ, वह लोग कहाँ हैं, जो हम लोगों से वोट माँगने आये थे ? हमने

उनको मिनिस्टर बनाया, और हमारी मुसीबत के वक़्त वह कहाँ मुँह छुपा कर बैठे रहे।....अब बताइये कि चार किश्तियाँ, सैकड़ों आदमी।.... कप्तान साहब," वह एक फ़ौजी से बोली—"मेरा घर गिर गया, और मेरे चार कुर्ते दीवार के नीचे दब गये। अब वही रोज़गार है, हुज़ूर। दो-चार मुरियाँ रह गई थीं, कि यह आफ़त टूटी।....सरकार, वह कुर्ते तो निकलवा दीजिये।"

नरेन्द्र घुटनों-घुटनों पानी में क़दम बढ़ाता हुआ चलने लगा। चलता गया, चलता गया कि एकदम ठिठक गया। सामने तीन-चार बड़ी-बड़ी तस्वीरें बहती चली जा रही थीं, और उनके आस-पास बहुत से कागज़ बह रहे थे। उसने मुश्किल से अपना संतुलन कायम रखते हुए, झुक कर एक कागज़ उठाया। किसी कापी का वर्क था, जिस पर सिर्फ एक शेर लिखा था : 'मेरे रोने की हिकायत जिसमें थी, एक मुद्दत तक वह कागज नम रहा।'

नरेन्द्र को हँसी आ गई। उसने कागज़ को अपनी कमीज पर दबाया, और तह कर के जेब में रख लिया। फिर रफ़्ता-रफ़्ता पानी घुटनों के नीचे होता गया, फिर टखनों तक। और फिर वह निराला-नगर के कैम्प में दाखिल हो गया। अब सुबह की पौ फटने वाली थी। साढ़े-तीन बजे होंगे, या शायद चार। बादल बिलकुल हट चुके थे। आसमान के किनारे-किनारे ज़रा-ज़रा-सा गुलाबी और सफ़ेद रंग झलक रहा था। कैम्प में बिलकुल सन्नाटा था। लोग ज़मीन पर बिस्तर बिछाये, जो कुछ सामान बचा-खुचा था, उसको गडमड रखे सो रहे थे। कहीं-कहीं चारपाइयाँ भी थीं।

तीन-चार खेमे थे, जिनमें से एक बहुत बड़ा था, और उसमें से किसी बच्चे के रोने की दबी-दबी-सी आवाज़ आ रही थी। वह रोना नहीं था, कुछ इस तरह की ठिनठिनाहट थी, जैसे बच्चे सोते से जाग कर फिर सोते वक़्त करते हैं। उस खेमे के पास ही दो छोटी छोलदारियाँ थीं, जिनमें से एक के अन्दर रोशनी जलती हुई मालूम होती थी।

नरेन्द्र उसके पास गया और अन्दर झाँका। "मैं आ सकता हूँ?"

डाक्टर सहाय ज़मीन पर दरी बिछाये एक लकड़ी के बक्स पर लालटेन रखे, सामने दवाओं की शीशियाँ और कुछ और सामान जमाये, एक नोटबुक में कुछ लिख रहे थे। नरेन्द्र की आवाज़ पर चौंके। उसको पहचान कर उनके थकन से भरे चेहरे पर एक बेहद थकी हुई मुस्कराहट आई। गर्दन हिला कर उसे क़रीब आने का इशारा करते हुए बोले—"नीता बड़े खेमे में है। उसकी चाची भी वहीं हैं। जितने बच्चे बचाये गये हैं, और जिनके माँ-बाप का पता नहीं चल रहा है, वह उसी खेमे में हैं।" फिर ज़रा रुक कर बोले—"क्या डालीगंज से आ रहे हो? तुमको पता चला?"

नरेन्द्र कुछ बोलने के बजाय एकदम ज़मीन पर ढह पड़ा, और और डाक्टर सहाय के घुटने से लिपट कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। उन्होंने उसका सर सहलाया, और बोले -"रोओ मत, नरेन्द्र! जो दूसरों के लिये मरते हैं, वह सदा अमर हो जाते हैं? उस बच्चे को देखना, जिसे उन्होंने बचाया है। बहुत प्यारा है।....मैं भी अभी कोई दो घंटे हुए वहीं से लौटा हूँ। नीता वग़ैरा को साथ लेता आया।"

फिर वह अपनी नोटबुक पर निशान लगाने लगे। "दुर्गा—दो सौ, श्याम—दो सौ एक, हसन अली, उसकी बीवी, तीन बच्चे—दो सौ छः, मुरारी और उसकी माँ, दो सौ आठ।....अच्छा, अब यहाँ तक तो इंजेक्शन लग गये हैं। अब दो सौ आठ से आगे नम्बर लगेगा।.. नरेन्द्र तुम्हें भी तो इंजेक्शन लगाना आता होगा?"

"जी हाँ।"

"तो तुम आज मेरे साथ लगो। या फिर ऐसा करो, कि ज़रा सुबह हो, तो तुम सिविल अस्पताल जाओ। वहाँ दवा मिल जाये तो लाओ। यहाँ जितनी हैं, वह तो अब ज़्यादा-से-ज़्यादा सौ डेढ़ सौ इंजेक्शन भर की हैं। और यहाँ सुबह से इंजेक्शन लेने वालों का ताँता बँध जायेगा।"

"मगर, डाक्टर साहब, सिविल अस्पताल से तो लाने में बड़ी देर लगेगी। अग्रवाल ब्रदर्स तो यहीं हैं डालीगंज में। इधर ही से ले आऊँगा। वह तो, सुना है, सैलाब कमेटी का मेम्बर भी है।"

डाक्टर साहब ने ज़ोर से थूका। "उस कमीने का नाम न लो, बेटा। उसने सारी दवायें छुपा दी हैं। कहता है, कि नीचे के गोदाम में थीं, बह गयीं। और कमेटी को लिखा है, कि 'दूने दाम पर ब्लैक से मिल सकती हैं। कहिये तो ला दूं।' अपनी दुकान में ताला डाल दिया है।"

नरेन्द्र हैरान रह गया। फिर एकदम बिफर कर बोला—"अगर आप हुकुम दें, तो हम चार-पाँच नौजवान मिल कर अभी उसका ताला तोड़ दें। फिर देखा जायेगा। मैं अभी डालीगंज में बहुत से लड़कों को देख कर आया हूँ, जो लोगों को निकाल रहे हैं। दो-चार को लेकर धावा बोल देता हूँ।"

डाक्टर सहाय मुस्कराये। "अच्छा-अच्छा, पहले नीता से मिल लो, कुछ खा पी लो। फिर सोचेंगे।" फिर उन्होंने अपने अँगूठे से बड़े खेमे की तरफ़ इशारा किया।

नरेन्द्र ज़रा झेंप गया, मगर फ़ौरन उठ कर उस खेमे की तरफ़ बढ़ा। अन्दर से गुनगुनाने की आवाज़ आ रही थी—लोरी की-सी आवाज़। नरेन्द्र ठिठक गया। हर तरफ़ ज़मीन पर सोते हुए, बेघर-इन्सान। दूर से पानी बहने की मद्धिम गड़गड़ाहट, बार-बार घरों के गिरने के हल्के-हल्के धमाके। कभी-कभी 'बचाओ, बचाओ' की आवाज़ें। चारों तरफ फैला अँधेरा। मगर क्षितिज के किनारे-किनारे सुबह की खिलती हुई रोशनी। और लावारिस बच्चों के कैम्प से आती हुई संगीत की सी मीठी, मधुर, दर्दनाक, हल्की लय—'चलत पुरवाई सूम—सन—न—न—न— ।'

नरेन्द्र ने खेमे के बल्लम पर अपना सिर टेक दिया, और खड़ा रहा। 'ठीक ही कहते थे नवाब चचा, कि नीता को तो संगीत सिखाना

चाहिये। संगीत उसके खून में रचा हुआ है....।' फिर उसने आहिस्ते से खेमे का पर्दा उठाया। बाँस की मूंज से बिनी चारपाई पर से नीता यकायक उठी। "कौन है ?" और फिर उसने लालटेन उठाई।

एक हाथ को मोड़ कर, वह उस नन्हे-से बच्चे को गोद में लिये थी, दूसरे हाथ में उठी हुई लालटेन की मद्धिम रोशनी उसके और बच्चे के चेहरे पर पड़ रही थी। और उसके पीले उदास चेहरे से लगा हुआ, बच्चे का खिला हुआ, गुलाबी चेहरा ! ऐसा लग रहा था, जैसे किसी चित्रकार ने रंग भर कर चित्र में तीखापन ला दिया हो।

नरेन्द्र ने दोनों हाथ फैला दिये, और लड़खड़ाते क़दमों से आगे बढ़ा। "नीता ! मैं हूँ नरेन्द्र!"

१३

नीता ने शलवार के पाँयचे और ऊपर चढ़ाये, और बोली—"चौदह दिन हो गये इस बाँध को टूटे, और अभी तक यहाँ इतना पानी भरा है !"

नरेन्द्र किनारे की तरफ बढ़ा, ईंटों के ढेर में से पाँच-छः ईंटें उठायीं, और आगे बढ़ते हुए बोला—"रुक जाओ, नीता। मैं ये रखे देता हूँ। इन पर पाँव रख-रख के आओ।"

और फिर वे दोनों ईंटें जमाते, उन पर चलते, आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ने लगे ! अब ईंटें ख़त्म हो जातीं, तो नरेन्द्र झुककर पानी में छुपी हुई दस-पाँच ईंटें और निकालता, एक-एक करके रखता जाता, और दोनों आगे बढ़ते जाते।

बीच सड़क में एक लम्बी-सी ऊँची मोटर खड़ी थी। उस पर एक तरफ़ लिखा हुआ था : 'वन्य जीवन' (वाइल्ड लाइफ़)। उसके पहिये अभी भी कुछ पानी में डूबे हुए थे। नीता हँसने लगी। "वाह भई ! यह अच्छी रही ! वन्य जीवन। इस वक़्त तो हम सब का ही जीवन वन्य हो रहा है। यह यहाँ कहाँ से आ गई, नरेन्द्र ?"

नरेन्द्र अपने कन्धे पर लटके हुए थैलों को सँभाल कर, नीता को एक ईंट पर सहारा देता हुआ बोला—"मेरे ख्याल में जब बाँध फटा होगा, और पानी आया होगा, तो यह उस वक़्त यहाँ से गुज़र रही होगी। इस पर जो लोग रहे होंगे, वे भागकर किसी दोमंज़िले मकान में चले गये होंगे। देखो, देखो, यह दो-मंज़िला मकान है न, इसकी छत पर उस दिन आदमी ही आदमी थे।" फिर उसने अपनी छड़ी से दिखाते हुए कहा—"देखो, इसकी छत के पास यह निशान-सा जो है, यह पानी ही का है।"

फिर दोनों आगे चलने ही लगे थे, कि दूर से एक खूबसूरत औरत और कुछ मर्द दिखाई दिये, जिनमें एक मुन्शी या नौकर लगता था। सब के ही हाथों में कुछ बंडल क़िस्म की चीज़ें थीं। नीता बोली "पहचानते हो ? यह राजा फूलपुर की बहन हैं। इस बाढ़ ने राजा, प्रजा सब एक कर दिये। कौन सोच सकता था, कि ये लोग भी यूँ कीचड़ में सामान ढोते फिरेंगे। इस वक़्त तो यह है न, कि इतना ज़्यादा पानी नहीं है कि किश्ती चले। और इतना कम भी नहीं कि मोटर या कोई सवारी चले। इसलिये जो आये, वह झक मारकर पानी में हिलता हुआ निकले, वरना सामान से हाथ धोये।"

फिर जैसे-जैसे आगे बढ़ते गये, सभी पड़ोसियों से मुलाक़ात होती गई। ठाकुर वीरसिंह, नुक्कड़ वाला बनिया, बटलर पैलेस में रहने वाले सिन्धी दुकानदार, सेशन जज नूरइलाही साहब, रेडियो स्टेशन पर काम करने वाली मिसेज़ परहंस, परचून का दुकानदार अहमद अली, रिक्शे वाला बरकत, झगड़ू और गोविन्दा, सभी इधर-उधर घूम

रहे थे। हर दुकान की छत पर भीगा हुआ फर्नीचर, दरियाँ, लेहाफ़, क़ालीन, किताबें सूख रही थीं। कुछ लोगों ने गिरी-पड़ी ईंटें जमा कर अपने घरों के सामने चबूतरे-से बना लिये थे, और उन पर अपना सामान रख कर सुखा रहे थे।

नीता ने अपने घर का फाटक खोला। फाटक पर लगी हुई तख्ती पर 'सिन्हा' का सिर्फ़ 'हा' रह गया था। नीता एकदम हँसने लगी। "नरेन्द्र, यह देखो, चाचा के नाम में से 'सिन' सैलाब बहा ले गया!"

नरेन्द्र भी हँसने लगा, "अच्छा ही हुआ। मरने के बाद सीधे स्वर्ग जायेंगे।"

फाटक से होकर आँगन के दरवाज़े की तरफ़ चलते हुए, नीता कई बार लड़खड़ाई। चहारदीवारी की सारी ईंटें गिर चुकी थीं, और जगह-जगह ज़मीन ऊबड़-खाबड़ हो रही थी। नरेन्द्र उसे सँभालते हुए आँगन में ले आया, और आँगन से होकर बरामदे में। अब पानी बरामदे से नीचे था। नीता ने बरामदे में आकर गीली चप्पलें एक तरफ़ को उतार दीं। इधर-उधर देखा। रामी ने उसके आने के पहले बरामदे को झाड़कर मेज-कुर्सियाँ लगा दी थीं। नरेन्द्र ने खाने-पीने की चीज़ों के थैले मेज़ पर रखे, और खुद भी मेज़ पर बैठ गया। नीता एक कुर्सी खींच कर पास ही बैठ गई, और चारों तरफ़ देखते हुए बोली—"यक़ीन नहीं आता कि इसी घर में हम लोग रहते थे। इसकी शक्ल ही बदल गई।"

नरेन्द्र ने भी इधर-उधर देखा। बोला—"चाचा ने बड़ी अक़्लमंदी की, जो आते ही चाची को लेकर कानपुर चले गए। अगर वह यह हालत देखतीं, तो उनके दिल पर गहरी चोट लगती।"

"चोट तो मेरे दिल पर भी काफ़ी लगी है, नरेन्द्र। मगर इतनी नहीं लगी, जितनी मैं सोच रही थी कि लगेगी। शायद इसकी यह वजह होगी, कि सभी डूबे हुए हैं। इस घर की एक-सी हालत है।"

साइड-बोर्ड के पास जाकर, नरेन्द्र ने आलमारी खोलते हुए कहा—

"रामी कह रही थी, कि उसने स्टोव और मिट्टी का तेल यहाँ कहीं रखा है। हाँ, है तो।" उसने स्टोव हिलाया। "हाँ, तेल भी है इसमें।" फिर उसने स्टोव को मेज पर रखा, माचिस निकाली, और जलाकर आलमारी से केतली निकाली, और उसमें पानी चढ़ा दिया।

पानी खौल ही रहा था, कि रामी मचामच करती, दरवाज़े से दाख़िल हुई—"बिटिया, नमस्ते। भइया, नमस्ते। ...बिटिया, आज तो कमरा खोले का है न ?"

नरेन्द्र ने रामी को देखकर, दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया। उसे बड़े ज़ोर की हँसी आ रही थी। घुटने से भी ऊपर साड़ी उठाये, और उसे धोती की तरह कस कर बाँधे, बाल बिखराये, हवन्नक सूरत, तमाम भीगी, वह बिल्कुल कोई दरियाई चुड़ैल लग रही थी। नीता से कुंजी लेकर, वह दरवाज़े में जुट गई—धड़ाधड़, धड़ाधड़ !

"हे बिटिया, यह तो नहीं खुल रहा है। जाम हो गया।" धड़ाधड़ ! "अरे, भइया, बिलकुल से जाम हो गया। नहीं खुल रहा है।"

नरेन्द्र ने आगे बढ़ कर, एक लात दरवाज़े पर मारी। झनाझन करते हुए दो शीशे टूट कर गिरे। मगर दरवाज़ा खुल गया। अन्दर से बन्द पानी की सड़न का भभका निकला।

नीता बोली—"हाय ! अच्छा दरवाज़ा खोला, कि शीशे ही तोड़ दिये। चाची के आने से पहले लगवा देना, भई, वरना उनको बहुत कोफ़्त होगी। रामी, भई; चाय बना। बर्तन-वर्तन हैं ?"

"हाँ, बिटिया, पहले चाय पी लीजिये। अभी अन्दर जाइयेगा मत। मार गन्धाय रहा है।....भइया, ज़रा यह बिटिया वाला कमरा भी खोल देते। तब तक हम अपने घर से केतली, प्याली, प्लेट ले आयें।" और वह मचामच करती अपने क्वार्टर की तरफ़ दौड़ी।

चाय ख़त्म करके, नीता अपने कमरे की तरफ़ बढ़ी। क़ालीन पर कीचड़ की मोटी तह जमी थी, और उस पर आलमारी औंधी पड़ी थी। मेज़, कुर्सियाँ कहीं की कहीं थीं। सिंगार-मेज़ उल्टी हुई थी।

और इन सब के बीचों-बीच नीता का टेबुल-लैम्प वाला बच्चा क़ालीन पर कीचड़ में बैठा था। बड़ा-सा पेपरमैश का यह बच्चा नीता ने सैलाब से कुछ ही दिन पहले खरीदा था। दोनों हथेलियाँ ठुड्डी के नीचे लगाए, उँगलियों की पोरें कनपटियों पर दबाये, आँखें तिरछी किये, सिर पर बल्ब जमाये, वह एक दुकान के शीशे में से ऐसी शरारत-भरी मासूमियत से झाँक रहा था, कि नीता का दिल लोट गया था। और उसने फौरन उसे खरीद लिया था। फिर रात को नीता के सिरहाने एक ऊँचे से स्टूल पर बैठ कर, वह उसे तिरछी नज़रों से देखता और रोशनी देता रहता था।

इस वक़्त भी वह कमरे के बीचों-बीच कीचड़ पर बैठा, उसी तरह तिरछी नज़रों से नीता को देखने लगा। मगर उसकी निगाहों में जैसे एक शिकायत थी—एक अजीब-सी दुखभरी शिकायत। इतना सैलाब, इतना पानी, इतना तूफ़ान—और तुम मुझे अकेला छोड़कर चली गयीं ?

नीता बेक़रार होकर आगे बढ़ी, और एकदम उसे गोद में उठा लिया। और फिर वह एकाएक घुल गया। हाथ लगते ही वह ऐसा पिघल गया, जैसे बस नीता के हाथों की गर्मी का ही इन्तज़ार कर रहा था। नीता फूट-फूटकर रोने लगी। नरेन्द्र चाय की प्याली मेज़ पर रखकर दौड़ा। "नीता, क्या बात है ? क्या हुआ ?"

और वह उस पेपरमैश के लोंदे को देखकर खड़ा-का-खड़ा रह गया। वह भी उसे रोशनी देते देख चुका था। जिन चीज़ों को हम बेजान समझते हैं, शायद उनमें भी एक जान होती है। शायद उनको भी मौत आती है। शायद मरते वक़्त उनको भी यह ख्वाहिश होती है, कि जब वे हमेशा के लिये खत्म हों तो उनके चाहने वाले उनके पास हों। शायद उनका भी दम किसी के इन्तज़ार में अटका रहता है। और वह आया नहीं, कि फ़ैसला हो गया।

दूसरे दिन नीता और नरेन्द्र फिर वज़ीर हसन रोड आए, तो

सड़क के नाम वाले पत्थर के पास ही से कुछ अजीब-सी आवाज़ें आने लगीं—'फचर-फचर—शाँय-शाँय !"

नीता ने घबराकर नरेन्द्र की बांह पकड़ ली। "नरेन्द्र यह क्या आवाज़ है? कहीं पानी फिर तो नहीं बढ़ गया? उधर बाँध की तरफ़ से तो नहीं आ रहा है?"

नरेन्द्र को भी कुछ हैरानी हुई, कुछ घबराहट। "पता नहीं। अच्छा, तुम रुको। मैं आगे बढ़कर देखता हूँ।"

नीता रुक गई। नरेन्द्र जल्दी-जल्दी चलता हुआ थोड़ी दूर चला, फिर क़हक़हा मार के हँसने लगा।

अजीब दृश्य था। हर घर में झाड़ू चल रही थी। पानी डाल-डालकर कीचड़ धोई जा रही थी। जब तक इतना पानी है, कि उसी से फ़र्श और फ़र्नीचर धुल सके, तो उससे क्यों न फ़ायदा उठाया जा सके ?

दोनों अपने घर में दाख़िल हुए, तो वहाँ से भी वही आवाज़ आ रही थी। तमाम सड़क पर एक ही आवाज़। हर घर से एक ही आवाज़। जैसे सब इन्सान मिल कर प्रकृति के किए हुए ज़ुल्म पर झाड़ू फेर रहे हों....।

दूसरे दिन एक किस्म की आवाज़ के बजाय दो क़िस्म की आवाज़ें आने लगीं। हर घर के दरवाज़े और खिड़कियाँ कीचड़ भर-भर कर जाम हो गये थे। इसलिये धड़ाधड़ खोले जा रहे थे। हर धड़ाके के साथ एक दो शीशे झनाझन टूट कर गिरते थे। धड़ाधड़, झनाझन धड़ाधड़, झनाझन ! दो दिन तक बराबर यह आवाज़ें आती रहीं। जैसे थोड़ी-थोड़ी देर बाद छोटी-मोटी बमबारी हो रही हो। शाम को फिर सन्नाटा हो जाता था। सब अपनी-अपनी गठरियाँ-मुठरियाँ उठाये अंधेरी सड़क पर थके-थके कदम उठाते, अपने अस्थायी ठिकानों की तरफ़ शहर से रवाना हो जाते।

पाँचवें दिन ज़मीन का पानी सूख गया। सिर्फ़ कीचड़ रह गई।

और उस कीचड़ में सबसे पहले उन क़दमों के निशान बनने लगे, जो रोशनी ला रहे थे —बिजली के मिस्तरी, कुछ पैदल, कुछ साइकिलों पर, अपने औज़ारों के थैले सँभाले, तेल और कालिख से भरे कपड़े पहने, ईंटों पर से साइकिल उछालते हुए, गुनगुनाते, हँसते-बोलते। वे तमाम घरों में फैल गए, सड़क के खम्भों से लटक गए। टेढ़े खम्भों को सीधा कर-कर के, सीढ़ियाँ लगा-लगा कर, वे तारों तक पहुँच गए, और उनकी हथौड़ियाँ अपना साज़ बजाने लगीं। ऐसा लगता था कि हज़ारों दरख्तों पर लाखों हुद-हुद एकसाथ चोंच मार रहे हैं। तीन दिन तक लगातार यह आवाज़ आती रही। और चौथे दिन गोधूलि के समय जब रात का अंधेरा दिन की रोशनी पर बढ़ रहा था, एक सिरे से आवाज़ उठनी शुरू हुई —'बिजली आ गई, बिजली आ गई !....रोशनी आ गई !....रोशनी, रोशनी, रोशनी !'

नीता ने हाथ बढ़ाया। किट की मद्धिम आवाज़ के साथ रोशनी फैल गई। उसने चारों तरफ़ निगाह दौड़ाई। दीवार पर हाथ रखा। अभी तक कितनी गीली थी दीवार। शायद बहुत दिनों इसी तरह गीली रहेगी। उसने मेज़ पर रखे रेडियो का प्लग उठा कर साकेट में लगाया, और उसकी सुई घुमाने लगी। बेगम अख्तर की आवाज़ पहले मद्धिम-मद्धिम उठी, फिर तेज़ हुई : 'छाय रही काली घटा।....'

नरेन्द्र सिर झुकाये मेज़ के पास बैठा था। संगीत की आवाज़ सुन-कर चौंक पड़ा, जैसे सोचते-सोचते एकदम रुक गया हो। फिर उसने प्यार-भरी नज़रों से नीता की तरफ़ देखा और आहिस्ता से कहा—"ए मसीहा कुछ तो बोलो, क्या तुम्हारी राय है ?...."

नीता ने शरमा कर सिर झुका लिया। वह कुछ नहीं बोली।

नरेन्द्र अपनी जगह से उठकर, उसके पास तख्त पर आ बैठा—तख्त जो अभी तक भीगा था, जिस पर न तख्तपोश था, न गद्दा, न कुशन। उसके पायों में अभी तक कीचड़ पुती थी। नीता की आँखों में आँसू आ गए। गोद में रखे हुए दोनों हाथों को मलते हुए बोली—

"हाँ गुज़र तो गया, मगर कितनी बड़ी भेंट ले गया। मुझे तो यक़ीन नहीं आता, कि अब हम लोग नवाब चचा को कभी नहीं देखेंगे।"

नरेन्द्र चुप रहा।

नीता ज़रा रुक के बोली—"तुमने देखा नहीं। नरेन्द्र, मगर उस वक़्त जब यहाँ पानी आया था, तो एकदम शोर उठा था—'पानी, पानी!' मैंने दौड़ कर यह आँगन का दरवाज़ा खोला था। यक़ीन मानो, यह नहीं लगता था कि पानी है बल्कि ऐसा मालूम हो रहा था, कि भूरे रंग की एक सात-आठ फीट ऊँची दीवार है, कि दौड़ती चली आ रही है। फिर जब पानी यहाँ भरा हुआ था, तो ऐसा लगता था, कि अब यह कभी यहाँ से नहीं हटेगा। यह भयानकपन, यह सन्नाटा यह अँधेरा सदा छाया रहेगा। यूँ ही उल्लुओं की आवाज़ हमेशा इस बस्ती में गूँजा करेगी। मगर चन्द ही दिनों बाद वह तबाही ख़त्म हो गई। और आज—आज तो रोशनी भी आ गई।....मगर, नरेन्द्र, कितना अच्छा होता, अगर नवाब चचा हम लोगों को छोड़ न जाते!"

नरेन्द्र उसके ज़रा और क़रीब आ गया, और उसके कन्धों को अपनी बाँह के घेरे में लेकर बोला—"देखो, नीता, हम लोगों को यह सोचना चाहिए, कि उन्होंने अपनी जान देकर एक और जान बचाई। नई ज़िन्दगी हमेशा पुरानी जिन्दगी से ज्यादा क़ीमती होती है। शायद इसी ख़्याल से वह उस बच्चे को बचाने के लिए अपनी जान पर खेल गये।"

नीता अपनी गोद में गिरते हुए आँसुओं को पोंछ कर बोली—"हाँ, हो सकता है।" फिर ज़रा रुक कर बोली—"आज यहाँ आने से पहले मुझे मालूम हुआ, कि उस बच्चे के माँ-बाप मिल गये, नरेन्द्र! ....आज का दिन बड़ा अच्छा था। मैं उसके लिये बहुत परेशान थी।" उसकी आँखों से फिर आंसू गिरने लगे।

नरेन्द्र ने उसके आँसू पोंछे। "और कल से तुम आर्ट कालेज

जाओगी, मैं अपनी लेबोरेटरी जाऊँगा। तुम्हारी छेनी फिर गुनगुनाएगी। मेरे शीशे फिर छनकेंगे। इसमें कोई अजीब बात नहीं है, नीता। प्रकृति सदा से इंसान को चैलेंज करती आई है। उसकी मेहनत पर, उसकी आरज़ुओं पर पानी फेरने में बड़ा मज़ा आता है प्रकृति को। मगर –" उसने नीता का एक हाथ थामा। "और प्रकृति से इस लड़ाई को लड़ने के लिये ही आदम और हव्वा एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर दुनिया में आये।....उठो, रोओ नहीं।....तमाम सैलाब देख कर मैं इतना परेशान नहीं हुआ, जितना तुम्हारी आँखों से बहती हुई इन बूंदों को देखकर ! मत रोओ, नीता ! मत रोओ, मेरी जान ! उठो। अभी बहुत कुछ करना है।"

आख़िरी अध्याय

(बहुत बरसों बाद, जब यह किसी उपन्यास का पहला अध्याय होगा) !

"तो अम्मा तुम्हारी असली माँ नहीं है ?" नौजवान ने पूछा ।

"औरत जब भी माँ होती है, तो वह असली ही माँ होती है ।.... उन्होंने मुझे जन्म नहीं दिया, मगर सिर्फ़ वही मां नहीं होती, जो जन्म दे ।" लड़की ने जवाब दिया ।

"लेकिन तुमने मुझे पहले कभी तो यह नहीं बताया । ....मैं साल भर से तुम्हें जानता हूँ, तुम से प्यार करता हूँ ।"

"मैं चाहती थी, कि तुम—यानी कि मुझे इस बात का यक़ीन हो जाये, कि तुम और मैं जिंदगी के साथी बनेंगे, तब मैं तुम से कहूँगी ।" फिर एक पल चुप रहकर, उसने एक आह भरी, और साँस खींच कर, मुश्किल से कहना शुरू किया—"अम्मा ने मुझे पाँच साल की उम्र में बाहर होस्टल में डाल दिया था । गर्मियों में यहाँ आती थीं, तो या तो वह मुझे लेकर पहाड़ चली जाती थीं, या दादी अम्मा के साथ भेज देती थीं । उन्होंने मुझे यहाँ घर से भी ज़्यादा नहीं निकलने दिया ।

पर जिस साल मैं तेरह बरस की हुई, और उन्होंने सोचा कि अब यहाँ आठवीं में मेरा दाखिला हो सकता है, तब उन्होंने मुझे यह भेद बता दिया—कि उनकी शादी भी उस इंजीनियर से नहीं हो पाई थी, जिसकी तस्वीर बड़े कमरे में लगी है, जिस पर वह रोज़ फूल की माला लटकाती हैं, जिसे मैं इस वक़्त तक अपना बाप समझती आई थी।"

लड़का उसके चेहरे पर आते-जाते रंगों को देख रहा था। "उन्होंने मुझे होस्टल में भी इसीलिये डाला, यहाँ से अधिकतर अलग इसीलिये रखा, कि मुझे बिलकुल बचपन में यह मालूम न होने पाये, कि....वह उस वक़्त का इंतज़ार करती रहीं, जब कि मैं इतनी बड़ी हो जाऊँ, इतनी समझदार हो जाऊँ, कि वह खुद मुझसे कह सकें।....मुझे होस्टल में रखने में उन्होंने बहुत तकलीफ़ उठाई। लगभग सारा ही पैसा मुझको जाता था, महीनों मेरी माँ और दादी माँ ने सिर्फ़ दाल-रोटी खाकर बसर की, और मेरे समझदार होने का इंतज़ार करती रहीं। फिर मेरी दादी तो मर गईं, और मैं अम्मा के साथ यहाँ रही।"

"तो अम्मा ने तुम्हें क्या बताया ?"

"उन्होंने मुझे बताया, कि एक साल लखनऊ में बड़ी सख़्त बाढ़ आई थी, और मैं उसी सैलाब में बहती हुई न जाने किधर से आ गई थी।....वह इंजीनियर—"

"वही जिनकी तस्वीर लगी है ?"

"हाँ, वही।....वह डालीगंज के पुल के पास किनारे पर मगर पानी से ज़रा दूर ही—दर-असल कुछ ऐसा था, कि पानी और किनारा और दूर-दूर तक की बस्तियाँ, सब एक-सी हो गई थीं....बहरहाल वह जहाँ थे, वह जगह किनारे से बहुत दूर भी नहीं थी। और वह किश्ती में खड़े हुए, लोगों को निकलवा रहे थे। वह बहुत अच्छे तैराक थे, बड़े मज़बूत आदमी थे। उनकी सरकारी ड्यूटी तो दर-असल कहीं और थी, मगर उन्होंने मिलिटरी से कह कर डालीगंज के एक हिस्से पर लोगों को निकलवाने की ड्यूटी अपने लिये ले ली थी। मैं न जाने किधर से

बहती उधर ही आई। किनारे से बहुत दूर नहीं थी। उछाल के साथ एक बार ऊपर आई, तो वह पानी में एकदम कूद गये। एक हाथ से मुझे पकड़ कर, दूसरा हाथ मारते हुए वह तैरने की कोशिश करने लगे। ....मुझे बचाने से पहले वह कई लोगों को बचा चुके थे। थक भी गये होंगे।...." लड़की चुप हो गई, और चलती रही।

लड़का ज़रा देर रुक कर बोला—"कहो न।....क्या सोच रही हो!"

"मैं यह सोचने लगी थी, कि काश वह इतने बहादुर न होते! काश, वह....अच्छा, खैर, तो वह किनारे के काफ़ी करीब तो किसी तरह पहुँच गये। और फिर दोनों हाथों में मुझे उठाकर उन्होंने जोर से किश्तियों की तरफ फेंका। सिर ऊँचा करके, वह बस इतना ही चिल्ला पाये—'यह बच्चा जिंदा है।'....पानी में आधे से ज्यादा डूबे हुए पेड़ों में बहुत-सी किश्तियाँ बँधी खड़ी थीं। उनमें लोग थे, जिनमें से एक ने मुझे झेल लिया। वैसे मेरा बचना भी इत्तफ़ाक था..अगर मैं उस आदमी के बढ़े हुए हाथों में गिरने के बजाय पानी में गिरती, या किसी किश्ती से टकराती, तो ज़ाहिर है कि ख़त्म हो जाती।...."

"हाँ, वह तो ज़ाहिर है।"

"जिस आदमी ने मुझे झेला, उसने अम्मा को बताया, कि मुझे फेंकने के बाद वह इंजीनियर सँभल नहीं पाया। कुछ तैराक किनारे पर कूदे, पर और आगे जाने की हिम्मत न कर सके। एक-दो रस्से भी फेंके गये। मगर उसी पल एक बड़ी-सी लहर आई, और वह मेरे पिता-जी को हड़प कर गई।...."

वह फिर आहिस्ता-आहिस्ता चलने लगी। और उसके बाद यकायक सिर उठाकर, उसने लड़के को देखा। "बाप का क्या काम होता है? बच्चे की हिफ़ाज़त।...फिर जब मेरी अम्मा वहाँ पहुँचीं, तो वह बताती हैं कि बड़ा हंगामा था। लोग मेरे बाप के लिये रो-पीट रहे थे। मेरी माँ को बताया गया, कि एक बड़ी-सी लहर आने के बाद उनका

सिर दिखाई दिया था।....फौरन मोटर-बोट छोड़ी गई। मगर फिर उनका सिर एक बार बहुत दूर दूसरी तरफ दिखाई दिया, और फिर ग़ायब हो गया।....गोमती में नीचे बड़े गहरे गढ़े भी तो हैं न !"

"हाँ, हैं," लड़का बोला—"और जिस वक़्त यह वाक़या हुआ, उस वक़्त तुम्हारी अम्मा कहाँ थीं ?"

"वह अमीनाबाद में लगे किसी कैम्प में बाढ़-पीड़ितों को हैज़े के टीके लगवाने की निगरानी कर रही थीं। उन्हीं के स्कूल में एक कैम्प था, और कुछ कैम्प आस-पास थे। उन्होंने उन सब में टीके लगवाने की ज़िम्मेदारी ले ली थी। और टीके लगवाने वालों की लाईन बड़ी लम्बी थी, और वह इस इन्तज़ार में थीं, कि लाईन ख़त्म हो, तो वह मेरे पिता जी के लिये खाना लेकर उनकी ड्यूटी की जगह जायें। जब वह वहाँ पहुँचीं, तो उन्होंने यह देखा।....लोग अपनी मुसीबत में मुझको भी भूल गये थे। और मुझे एक किश्ती में सुला दिया गया था। अम्मा ने मुझे उठाया, और अपने साथ ले आईं।"

अब सिकन्दर बाग़ का चौराहा आ गया था। लड़की चलते-चलते सिकन्दर बाग़ में फाटक के एकदम मुड़ गई। लड़का पहले ज़रा हैरान हुआ, फिर वह भी मुड़ गया, और जल्दी-जल्दी चलता हुआ लड़की के बराबर में आ गया। वह बाईं तरफ को ज़रा-सी दूर पर एक कोने में लगे हुए एक बड़े से दरख़्त की तरफ बढ़ी। वह भी बढ़ा। लड़की ने ख़ामोशी से दरख़्त का चक्कर काटा, और फिर उसके तने पर बड़े प्यार से हाथ रखकर बोली—"जब मैं बिलकुल छोटी-सी थी, तो अम्मा मुझे अक्सर अपने साथ यहाँ लाया करती थीं। हम बस में आते थे, क्योंकि रिक्शा हमारे लिये बहुत महँगा पडता था। फिर हम लोग इसी दरख़्त के नीचे बैठते थे। अम्मा ने मुझे इस दरख़्त के बारे में कई कहानियाँ सुनाई हैं—ग़दर के ज़माने की कहानियाँ। और यहाँ एक हरसिंगार का पेड़ भी था। जब अम्माँ चुप बैठ जाती थीं, तो मैं हर-सिंगार के फूल चुन-चुन कर अपने फ़ाक के दामन में इकट्ठे किया

करती थी।" फिर वह जरा रुक कर बोली—"अम्माँ मेरे फ्राक खुद सीती थीं। वह सारी सिलाई घर में करती थीं, क्योंकि हम लोग दर्जी की महँगी सिलाई कहाँ से लाते ?"

लड़का बोला—"लेकिन तुम यह क्यों कहती हो, कि हरसिंगार का पेड़ था ? वह तो अब भी है।"

लड़की के चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट आई।...."यह दूसरा पेड़ है। जिस बाढ़ में मैं अम्मा को मिली थी, उसके बाद फिर वैसी ही बाढ़ एक बार और आई थी—उतनी ही बड़ी, उतनी ही भयानक, बल्कि शायद कुछ ज्यादा ही। उसमें वह पेड़ उखड़ कर बह गया था। मगर जब पानी हट गया, तो अम्माँ ने यहाँ के माली को राज़ी करके नया पौधा लगाया था। अपने हाथ से। बूढ़ा माली उनको बहुत मानता था, वह बरसों से यहाँ आकर बैठती थीं न।"

फिर लड़की तने पर हाथ रखे खड़ी रही। लड़के ने पूछा—"बैठोगी ?" और उसने अपना रूमाल निकाला। "बिछा दूँ ?"

वह चौंक पड़ी। बोली "ऐं ? नहीं...नहीं, बैठूँगी नहीं।"

और फिर वह धीरे-धीरे हरसिंगार तक पहुँच गई, और झुक कर फूल चुनती हुई बोली—"मैं और अम्मा ऐसे ही फूल चुन-चुन कर इकट्ठे करते थे, और फिर हम टहलते हुए काठ के पुल को पार कर के घाट की ओर समाधियों की तरफ चल पड़ते थे। कभी-कभी मेरी टाँगे थक भी जाती थीं। तब हम वज़ीर हसन रोड की नुक्कड़ पर बनी, छोटी-सी चूने की पुलिया पर बैठ जाते थे। मगर मेरी अम्मा कभी नहीं थकती थीं। बल्कि समाधियों की तरफ़ चलते वक़्त उनके क़दम कुछ तेज़ ही हो जाते थे।"

लड़का भी झुक कर फूल चुनने लगा, और बोला—"उस पीढ़ी के बहुत से लोग ऐसे ही थे। उन्होंने थकना कभी जाना ही नहीं। कितनी मुसीबतों और तंगियों का मुक़ाबला किया, पर हार नहीं मानी, हथियार नहीं डाले। वे ऐसे दौर से गुज़रे, मगर उन्होंने उम्मीद का दामन हाथ

से नहीं छोड़ा।" फिर ज़रा रुककर बोला—"कितनी मुश्किलों से गुज़रे होंगे ! कल्पना करने और भोगने में बड़ा फ़र्क़ है।"

लड़की बोली—"मगर सिर्फ़ मेरी माँ की ही पीढ़ी क्यों ? उससे पहले भी तो....जब मैं और अम्मा वहाँ से वापस जाते थे, तो मेरी दादी माँ छज्जे पर हमारा इन्तज़ार करती हुई मिलती थीं। उन्होंने कितना इन्तज़ार किया, इसका कोई हिसाब नहीं लगा सकता।.... तुम्हारे पास रूमाल है न ?"

"हाँ, है।" लड़के ने रूमाल निकाल कर दूब पर बिछा दिया। दोनों फूल चुन-चुन कर उस पर डालने लगे।

लड़की बोली—"जबसे यह नया बाँध बना है, सैलाब नहीं आया।"

"और न अब कभी आयेगा," लड़के ने कहा—"हमने उत्तर प्रदेश के पानी से राजस्थान के रेगिस्तान को गुलज़ार बनाने की स्कीम तैयार कर ली है, और बहुत जल्द उस पर काम शुरू हो जायेगा।" फिर ज़रा हँस कर बोला—"जरा सोचो, वहाँ रेत ही रेत थी, पीने का एक गिलास पानी भी मोल बिकता था, कुएँ इतने गहरे होते थे कि दो डोल डाले जाते थे। एक में कोई ढोल लेकर बैठता था, और पानी तक पहुँच कर ढोल बजाता था। तब ऊपर लोगों को पता चलता था, कि डोल पानी तक पहुँच गया। और अब उसी जगह, उसी ज़मीन से उन्हीं लोगों के हाथों वहाँ अंगूर पैदा होंगे, गेहूँ, गुलाब और बेले के फूल—और हरसिंगार।"

लड़की ने सिर उठा कर देखा, और मुस्करायी। "जो चीज़ आज वास्तविकता बन गई है, यह कभी लोगों का सपना थी।"

"और उन सपनों को हम इंजीनियरों ने पूरा किया !" लड़के ने सिर उठा कर लड़की को देखा और मुस्कराया। अब के लड़की मुस्कराई नहीं, गम्भीर रही। "नहीं, सिर्फ तुम इंजीनियरों ने नहीं, हम सब नें मिलकर पूरा किया। क्या मेरी अम्मा के बग़ैर भी यह सब

पूरा हो सकता था, जिन्होंने सारी ज़िन्दगी नई पीढ़ी की तालीम की बुनियाद डाली, और अब मुझे अपनी जगह पर खड़ा कर दिया है ? क्या मेरी दादी के बग़ैर भी ऐसा हो सकता था, जिन्होंने मेरे दादा के सपनों पर विश्वास किया—मेरी माँ और मेरी दादी के बग़ैर जिन्होंने इन्तजार किया, जो एक हरसिंगार के मर जाने पर दूसरा हरसिंगार लगाती रहीं ?....आओ, चलो । काफ़ी हो गये फूल ।"

लड़के ने फूलों से भरे रूमाल को समेटा, और दोनों आहिस्ता चलते हुए काठ के पुल पर आ गये । पुल के बीचों-बीच लड़की ने एक मिनट पुल के कठहरे को थाम कर दोनों ने नीचे बहती हुई गोमती पर एक नज़र डाली । और फिर वे घाट वाली सड़क पर उतरने लगे ।

"अब किधर जा रही हो ?" लड़के ने पूछा ।

"तुम आओ तो ।"

एक छोटी-सी, मामूली-सी समाधि थी, जिस पर लड़की ने रूमाल ही से फूल उँड़ेल दिये । और लड़का झुक कर, उस पर लगा हुआ शिला-लेख पढ़ने लगा :

'यह एक नौजवान इंजीनियर का स्मारक है, जो मरुभूमियों को उद्योग बनाने के सपने देखता था, और जिसने लखनऊ की विनाशकारी बाढ़ में एक नई ज़िन्दगी को बचाते हुए अपने प्राण बलिदान कर दिये !'